UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180877

UNIVERSAL
LIBRARY

H 82 | S 94 A G.H. 2893
सुदर्शन ।
अञ्जना । 1937

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 82/S94A Accession No. G.H. 2393

Author सुदर्शन ।

Title अञ्जना । 1937

This book should be returned on or before the date last marked below.

2 1 MAR 1973

अर्पण

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ५५ वाँ ग्रन्थ

अञ्जना

[भावनापूर्ण पौराणिक नाटक]

लेखक—

श्रीयुत सुदर्शन

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बंम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग-बम्बई

मूल्य एक रुपया दो आना

१९३७

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस
६ केलेवाडी, गिरगांव बम्बई नं० ४

निवेदन

कई वर्ष हुए, मैंने एक नाटक लिखा था। उस समय मुझे साहित्य-संसारके इस बाज़ारका जरा भी अनुभव न था। मैं समझता था, केवल तुकबन्दी कर लेना ही काफी है। इसके सिवा नाटककारको किसी अन्य प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं। गद्य और पद्य दोनोंके ढेर लगा दिये। इसके बाद सौभाग्यसे जब फ्रांसीसी, अँगरेज़ी और बंगाली नाटक देखनेका अवसर मिला, तब मेरी, आँखें खुल गईं। पहले विचार एकदम बदल गये। अब पता चला कि नाटकमें कविता रखना कैसी भूल है। नाटक मानव-जीवनका चित्र है। इसमें सबसे बड़ा गुण यह होना चाहिए कि यह स्वाभाविक हो। यदि यह नहीं तो इसे नाटक कहना साहित्य-संसारका सबसे बड़ा झूठ बोलना है। यह सच है कि पद्यसे नाटकमें जोर आ जाता है और स्टेजपर सौन्दर्य छा जाता है; परन्तु क्या किसीने कभी देखा है कि स्त्री-पुरुष बैठे हों और कवितामें बातचीत कर रहे हों, या किसीको नागने काट खाया हो और वह ताल-स्वरके साथ गाने लगा हो? और हमारा स्टेज तो इतना निकृष्ट हो चुका है कि राजा-रानी, अमीर-वजीर, ब्राह्मण-योद्धा, सभी गाते हैं और गजब यह है कि उनके गानेका कोई समय नियत नहीं। वह हर समय गाते हैं और बात बातमें छन्द और दोहे पढ़ते हैं। अञ्जनामें यह गुण या अवगुण नहीं। इसमें मानव-जीवनकी एक असाधारण घटनाका साधारण चित्र खींचा गया है।

नाटककारकी इच्छा होती है कि उसका हरएक पात्र सुकवि हो, और वह जो कुछ कहे, देखने और सुननेवालोंके दिलमें बैठ जाय। परन्तु उसे संयम रखना चाहिए। उच्चकोटिके सद्विचार प्रकट करनेके लिए एक-दो पात्रोंको चुन लेना चाहिए। अन्य पात्र साधारण मनुष्य ही रहें, तो अच्छा है।

इस समयतक मैं कहानियाँ लिखता रहा हूँ। नाट्य-संसारमें मेरा यह पहला ही प्रयत्न है। इसमें मुझे सफलता हुई है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, समय आप कह देगा। मुझे केवल यही कहना है कि इस समयतक हिन्दीमें जो उत्तम नाटक छपे हैं, वे प्रायः बंगला या अँगरेजी नाटकोंके अनुवाद हैं, हिन्दीमें मौलिक नाटकोंका अतिशय अभाव है। मुझे कमसे कम इतना संतोष है कि मैंने मौलिक नाटकोंमें एककी वृद्धि की है। नाटक अच्छा है या बुरा, यह दूसरी बात है; परन्तु इसके लिए हिन्दी भाषाको किसी अन्य भाषाके सम्मुख सिर झुकानेकी आवश्यकता नहीं। और मैं इसे बड़ी बात समझता हूँ।

रामकुटिया बुकडिपो, लाहौर
१८ अगस्त, १९२३ } —सुदर्शन

प्रस्तावना

अञ्जना और पवनकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। इसका वर्णन जैन-ग्रन्थोंमें पाया जाता है। सर्वप्रिय बनानेके लिए अनेक लेखकोंने इसको बड़े बड़े रोचक रूपोंमें प्रकट करनेका यत्न किया है। एकने इसे यदि साधारण जीवन-चरितके रूपमें लिखा है तो दूसरेने इसे उपन्यासका रंग देकर चित्ताकर्षक बनाया है। हनुमान-चरित आदि पुस्तकोंकी सहस्रों प्रतियाँ भारतीय भाषाओंमें निकल चुकी हैं। भारतीय नारी-समाज सती अञ्जनाके पवित्र चरित्रका बड़ी श्रद्धा और प्रेमसे पाठ करता है। उनकी पुनीत जीवनीसे उसे अपने जीवनोंको उच्च और पवित्र बनानेके लिए, प्रोत्साहन मिलता है। इस पतित अवस्थामें, आज भी भूमण्डलकी किसी भी खण्डकी स्त्रियाँ पातिव्रत्य, आत्म-त्याग, और धर्म-परायणता आदि दिव्य गुणोंमें आर्य्य ललनाओंका सामना नहीं कर सकतीं। इसका कारण वह अदृश्य परन्तु प्रबल प्रभाव है जो माता सीता, सती सावित्री और देवी अञ्जनाके पावन आदर्श भारतीय स्त्रियोंपर डाल रहे हैं। इस प्रभावको बनाये रखनेके लिए जो भी यत्न हो वह स्तुत्य है। इसलिए श्रीयुत सुदर्शनने इस पावनी कथाको नाटक रूपमें लिखकर वस्तुतः समाज-सेवाका एक भारी काम किया है। हिन्दीमें इस समय उच्च कोटिके मौलिक नाटकोंका भारी अभाव है। इस समय हिन्दीमें जितने भी अच्छे नाटक मिलते हैं, वे प्रायः सबके सब दूसरी भाषाओंके अनुवाद-मात्र हैं। यह कोई अपमानकी बात नहीं है। प्रत्येक भाषाकी उन्नतिके आरम्भिक कालमें ऐसा ही हुआ करता है। इधर दो-तीन वर्षसे हिन्दीमें मौलिक नाटक लिखनेके लिए भी उद्योग होने लगा है। कुछ नाटक निकले भी हैं; किन्तु उनमें लेखकोंको बहुत कम सफलता हुई है। किसी किसी नाटकमें तो ऐसी अस्वाभाविक बातें भरी हुई हैं कि देखकर हँसी आती है। एक पात्र फाँसीपर लटकाया जानेको है और वह गाता है; चोट लगती है और वह नाचता है। कैसी अस्वाभाविकता है! इनमें कुछ नाटक ऐसे भी हैं जिन्हें दृश्य काव्य कहना कठिन है, वे श्रव्य या पाठ्य ही कहे जा सकते हैं, और जो काव्य रंग-भूमिपर खेला नहीं जा सकता उसे नाटक कहना ठीक नहीं। नाट्य-कलाकी दृष्टिसे नाटकोंकी रचनामें पात्रोंका चारित्र-चित्रण एक

बहुत आवश्यक गुण है। इसमें सफल होनेमें ही नाट्यकारका कौशल है जो लेखक जीता जागता चित्र खींच सकता है वही सफल है। हमारे हिन्दीके मौलिक नाटकोंमें बहुतसे ऐसे हैं जिनमें यत्नपूर्वक ढूँढ़नेसे भी ऐसा कोई पात्र नहीं मिलता जिसे हम नियमानुकूल नायक कह सकें, और न कोई उसके उपयुक्त नायिका ही मिलती है।

रंग बहुतोंपर चढ़ानेका यत्न किया गया है, परंतु पूर्ण रूपसे कोई नहीं रँगा जा सका। परन्तु बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि सुदर्शनजीकी इस कृतिमें इनमेंसे कोई भी दोष नहीं। हिन्दीके मौलिक नाटकोंमें इस नाटकका स्थान बहुत ऊँचा है। यह एक ऐसी वस्तु है जिसको हिन्दीवाले बंगालियोंको दिखलाकर गर्व-पूर्वक कह सकते हैं कि यह भी द्विजेन्द्रलाल रायकी रचनाओंकी टक्करकी चीज है।

अञ्जनाकी मूल कथामें अनेक बातें अस्पष्ट हैं। उनके कारण-कार्यका संबंध साधारण पाठकोंकी समझमें नहीं आता। उदाहरणार्थ,—अञ्जनाका अपनी सासको पवनकी अँगूठी दिखा देने पर भी सासका उसपर विश्वास न करना, और व्यभिचारके संदेहपर उसे घरसे बाहर निकाल देना पाठकोंकी समझमें नहीं आता। परन्तु सुदर्शनने इस पहेलीको खूब स्पष्ट कर दिया है। आपका कहना है कि पवन अपनी अँगूठीके नगके नीचे एक काग़ज़का टुकड़ा रक्खा करता था। उसपर उसके हस्ताक्षर रहते थे। ललिताने अञ्जनासे पवनकी असली अँगूठी चुराकर वैसी ही एक नकली अँगूठी उसे पहना दी थी। अंजनाको इस बातका बिल्कुल ज्ञान न था। किन्तु जब उसकी सासने अँगूठीको तोड़कर उस काग़ज़पर अपने पुत्रके हस्ताक्षर न देखे तब उसे संदेह होना स्वाभाविक था।

सुदर्शनजीकी यह रचना एक सिद्धहस्त नाटककारकी रचना है। संवाद, अङ्क और दृश्य-वितरण, रंग-भूमिके संकेत इत्यादि जितनी भी नाटककी विशेषताएँ होती हैं, उन सबपर आपका पूर्ण ध्यान है। प्रत्येक दृश्य आपसमें खूब सम्बद्ध है। कथानक ऐसे ढँगसे रक्खा गया है कि पाठकोंकी उत्सुकता बराबर बढ़ती चली जाती है। पुस्तकको समाप्त किये बिना छोड़ना कठिन हो जाता है। सम्पूर्ण नाटक शृंगार, वीर, करुण, और अद्भुत रससे ओत-प्रोत है। इसमें स्वामिभक्ति, पति-भक्ति, प्रेम तथा प्रकृतिका वर्णन निहायत अनूठा है।

सुदर्शन मानव-मनोविकारोंको खूब समझते हैं। उनको प्रकट करनेमें भी वे कमाल करते हैं। मनोभावों और कल्पनाओंका वर्णन वे ऐसी स्पष्ट रीतिसे करते हैं कि पाठकोंकी आँखोंके सामने उनका एक जीता जागता चित्र-सा नाचने लगता है। इस नाटकमें एक नहीं अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ पाठक और दर्शकका मन करुणाके अथाह सागरमें निमग्न हो जाता है। ससुरालसे निकाली जानेपर अञ्जना अपने मायके पहुँचती है; परन्तु वहाँ भी आश्रय न पाकर वसन्तमालाके साथ वनमें जानेको विवश होती है। यह दृश्य बड़े ही हृदय-द्रावक शब्दोंमें चित्रित है। इसी प्रकार, अञ्जना-पवनका मिलाप हो जानेके पश्चात् वसन्तमाला अपना जीवनोद्देश्य पूरा हुआ समझ संन्यास ग्रहण कर लेती है। अञ्जना और पवन उसे अननुय-विनय-पूर्वक घरमें रहनेकी प्रार्थना करते हैं, वह एक नहीं सुनती। जब वे देखते हैं कि वह किसी प्रकार भी नहीं मानती तब वे अन्तको शिशु हनुमानको उसकी गोदमें डाल देते हैं। बस, उनका जादू चल जाता है, और वह गेरुए वस्त्र उतारकर घरमें रह जाती है। इस घटनाका वर्णन करके नाटककारने नारी-प्रकृतिके गम्भीरतम प्रदेशको टटोलनेके साथ ही अपनी रचना-चातुरीका अपूर्व परिचय दिया है।

सुदर्शन केवल नाटककार ही नहीं, वे सिद्धहस्त गीत-निर्माता और नीति-शिक्षक भी हैं। इस नाटकमें उन्होंने स्थान स्थानपर जो गीत दिये हैं वे बड़े ही मधुर, सरस और हृदयग्राही हैं। संवादोंके द्वारा पितृभक्ति, वृद्धोंके सम्मान और वीरोंकी पूजाके उपदेश बड़ी ही उपयुक्त और प्रभावशालिनी भाषामें दिये गये हैं। मुझे विश्वास होता है कि शीघ्र ही कोई नाटकमंडली इसको रंगभूमिपर खेलनेके लिए उद्यत हो जायगी और यह नाटक जहाँ अपने रचयिताकी कीर्तिको बढ़ायेगा वहाँ हिन्दी-साहित्य-भंडारका एक बहुमूल्य रत्न भी समझा जायगा।

पुरानी बस्ती,
होशियारपुर } सन्तराम, बी० ए०

पात्र-परिचय

स्त्री—

अञ्जना—महेंद्रपुरके राजाकी पुत्री।
हृदयसुन्दरी—अञ्जनाकी माता।
केतुमती—अञ्जनाकी सास।
रविसुन्दरी—अञ्जनाकी मामी।
सुखदा—अमृतपुरके राजाकी पुत्री।
वसन्तमाला—अञ्जनाकी सहेली।
ललिता—सुखदाका बनावटी नाम।
चम्पा—केतुमतीकी दासी।
प्रेमसुन्दरी—राजा वरुणकी रानी।
चन्द्रमुखी, शान्ता, गानेवालियाँ, दासियाँ।

पुरुष—

पवन—राजा प्रह्लाद विद्याधरका पुत्र।
प्रहसित—पवनका मित्र।
प्रह्लाद विद्याधर—पवनके पिता।
महेन्द्रराय—अञ्जनाके पिता।
प्रतिसूर्य—अञ्जनाके मामा।
विद्युत्प्रभ—एक राजकुमार।
वरुण—दुर्मति नगरके राजा।
अश्वपति—वरुणका सेनापति।
रावण—लंकाके राजा।
श्रीदेव, रत्नवीर } ——चम्पाके भाई।
दास, सिपाही, साधु, बालक।

———:०:———

स्थान—भारतवर्ष
समय—महाराज रामचंद्रसे पहले।

अञ्जना

पहला अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—अमृतपुरके राजमहलकी वाटिका

समय—सन्ध्यासे कुछ देर पश्चात्

[फूलके एक पेड़के सहारे राजकुमारी सुखदा चिन्तामें निमग्न खड़ी है। आठ सहेलियाँ गानेमें लीन हैं। सुखदा गानेकी ओरसे अनमनी प्रतीत होती है।]

सहेलियाँ गाती हैं—

प्रकृतिने सज्यो मनोहर साज।
नव दुलहिनलौं बनी ठनी है, स्वागत-हित रितुराज॥
वन वीथिनमैं बगर रही है, सुंदरता मधु-ब्याज।
बिरहिनि-हिय-बेधन जनु आयो, रितुपति सहित समाज॥
लता लहलहा उठी ललकिके, बौरे रसिक रसाल।
आम्र-मंजरीपै रस चाखन, टूट परी अलि-माल॥
चंचरीक-गुंजार स्रवन करि, मनको होत अनन्द।
कोइल-कूक मधुर अति लागत, पवन बहत मँद मंद॥
काको मन नहिं होत प्रफुल्लित, देखि बसंत-बहार।
द्रुम-दल बकुल आदि सब फूले, बहन लगी रस-धार॥

[सहेलियाँ जाती हैं । सुखदा कुछ देर उसी तरह चुपचाप खड़ी रहती है । एकाएक चौंककर आगे बढ़ती है और पागलोंकी नाईं चारों ओर देखनेके पश्चात् आप ही आप बड़बड़ाने लगती है ।]

सुखदा—एक एक करके दस वर्ष बीत गये, परन्तु मेरी आँखोंके सम्मुख अभीतक वही रम्य मूर्ति, उसी सुन्दरताके साथ घूम रही है। यही ऋतु थी, यही समय था। यही स्थान था, यही वृक्ष था। सूर्य्य अस्त हो रहा था, मन्द मन्द वायु चल रहा था। प्रकृतिपर अनूठा यौवन छाया हुआ था। पक्षी अपने अपने घोंसलोंको लौट रहे थे। मैं इसी वृक्षके नीचे बैठी हुई पुष्पोंकी माला बना रही थी। इतनेमें देखा, एक नवयुवक सम्मुख उपस्थित है। उसकी आँखोंमें आकर्षण था, कपोलोंपर मनोहरता थी, मस्तकपर तेज था। मेरा हृदय धड़कने लगा, सिर घूमने लगा। नवयुवक मेरे समीप आया। मेरे हाथोंने वह माला उसके गलेमें डाल दी, वह चला गया। मैंने देखा कि हृदय नहीं रहा। उसके स्थानमें माधुर्य्यसे मिली हुई पीड़ा थी, शीतलतासे मिली हुई जलन थी, रागसे मिला हुआ रुदन था, परन्तु हृदय नहीं था। तबसे मैं उसीके लिए रो रही हूँ, उसीके लिए तड़प रही हूँ। परन्तु माता-पिता उसके साथ विवाह करनेको राजी नहीं हैं। कौन जाने, मेरे जीवनकी नाव किधर जा रही है!

[प्रियतमाका प्रवेश]

सुखदा—कौन? प्रियतमा। बोलो, कहो। बताओ क्या समाचार हैं?

प्रियतमा—तुम्हारे पिताने तुम्हारा विवाह ठीक कर दिया।

सुखदा—क्या राजकुमार पवनके साथ?

प्रियतमा—नहीं।

सुखदा—तो—

प्रियतमा—राजकुमार विद्युत्प्रभके साथ ।

सुखदा—सत्यानाश ! क्या मेरी माताने इसका विरोध नहीं किया ? अस्वीकृति जतानेको सिर नहीं हिलाया ? क्रोध प्रकाश करनेको अश्रु नहीं बहाये ?

प्रियतमा—नहीं, वे इस सम्बन्धसे स्वयं सहमत हैं ।

सुखदा—तो सब कहना-सुनना निष्फल हुआ । अब अन्तिम प्रयत्न करना होगा ।

प्रियतमा—क्या ?

सुखदा—वही, जिसके सिवा और कोई मार्ग शेष नहीं रहा ।

प्रियतमा—अर्थात् ?

सुखदा—गृह-त्याग ।

प्रियतमा—नहीं नहीं, ऐसा न करो । पहले महारानीसे जाकर भेंट करो । सम्भव है, बात बन जाय । जो भी हो वे तुम्हारी माता हैं, स्त्री हैं । स्त्रीका हृदय कोमल होता है ।

सुखदा—(क्रोधसे) मेरी माता ! क्या वह स्त्री हैं और इसपर भी स्त्रीके प्रेमका रहस्य नहीं जानती हैं ? और इसपर भी एक स्त्रीकी चिताकी ज्वालापर अपनी और पिताजीकी प्रसन्नताका भवन बनाना चाहती हैं ? क्या वह स्त्री हैं और इसपर भी यह समझती हैं कि स्त्रीका हृदय ऐसी भूमि है, जिसमें प्रेमांकुर कुशाके समान जन्म लेता है, और उखाड़ा जाकर फिर उग सकता है ? क्या वह स्त्री हैं और फिर भी नहीं जानतीं कि स्त्रियाँ प्रेमके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेको प्रस्तुत रहती हैं ?—नहीं नहीं, परमात्माके लिए मुझे धोखा न दो । वह स्त्री नहीं हैं ।

प्रियतमा—राजकुमारी, मैं अनुरोध करती हूँ कि एक बार उनके पास जाकर अपने प्रेमका परिचय दो, और प्रार्थना करो जिससे वे तुम्हें इस उलझनसे बाहर निकालें। निश्चय वे तुम्हारी प्रार्थनापर ध्यान देंगीं, तुमपर करुणा करेंगीं।

सुखदा—परन्तु मुझे इस प्रकारकी कोई सम्भावना नहीं दीखती।

प्रियतमा—एक बार जाओ तो सही—

" **प्रयत्नेन हि सिद्ध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः।** "

सुखदा—परमात्मा! मेरी निराशाके मेघोंसे आच्छादित प्रारब्धके आकाशपर आशाका चन्द्र उदय कर। (प्रस्थान)

प्रियतमा—कैसे आश्चर्यकी बात है कि राजकुमारी जिसको समस्त हृदयसे प्रेम करती है, जिसपर मरती है, जिसको त्यागकर स्वर्गकी भी इच्छा नहीं करती, जिसके लिए प्रत्येक दुःख भोगनेको अग्रसर है, उसको इसका ध्यान तक भी नहीं है! (प्रस्थान)

[महारानी और सुखदाका प्रवेश]

महारानी—तू क्या बक-बक कर रही है, मुझे कुछ पता नहीं लगता।

सुखदा—मैं केवल यह कहना चाहती हूँ कि आपने मुझे उत्पन्न होनेके साथ ही क्यों न मार डाला? सुनती हूँ, बाल्यावस्थामें एक बार रोग-ग्रस्त होकर मृत्युके किनारे पहुँच गई थी। उस समय परिश्रम करके क्यों बचाया जो आज मेरा बलिदान करनेको उद्यत हुई हो?

महारानी—पगली!

सुखदा—मुझपर कृपा करो। राजाओंके यहाँ सैकड़ों दासियाँ

अन्न पाती हैं। क्या आपके यहाँ मेरे लिए भोजन नहीं रहा जो मुझे अपने द्वारसे धक्के दे रही हो ?

महारानी—क्या कन्याओंका विवाह करनेसे यह सिद्ध होता है कि उनके माता-पिताके घरोंमें उनके लिए अन्न नहीं रहा ?

सुखदा—परन्तु यह विवाह नहीं है। इससे तो विष खा करके मर जाना अधिक सुखदायक होगा।

महारानी—तुम्हारे कथनका प्रयोजन यह कि तुम्हारा विवाह पवनके साथ हो तभी तुम सुखी और प्रसन्न हो सकती हो, अन्यथा नहीं ?

सुखदा—(चुप रहती है।)

महारानी—तुम भारतकी ललना हो, तुम आर्य्यावर्तकी पुत्री हो। तुम्हें यह बेहयाई नहीं सोहती। भारतवर्षकी कन्यायें माता-पिताके संकेतपर विष खा सकती हैं, अग्निमें कूद सकती हैं; परन्तु सन्मुख आँखें उठानेका उन्हें साहस नहीं हो सकता। भोली भाली गौकी भाँति माता-पिताके द्वारा जिसके हाथ सौंप दी जाती हैं, उसीके पीछे जानेमें ही वे अपना कल्याण समझती हैं। माता-पिताकी इच्छा उनकी प्रसन्नता, माता-पिताका कथन उनके लिए आदेश और माता-पिताका चुनाव उनके लिए शिरोधार्य्य होता है। माता-पिताकी प्रत्येक बात उनके लिए निर्भ्रान्त प्रमाण होती है, जिसका वे आँखें बंद करके अनुकरण करना ही परम धर्म समझती हैं। और यह वह बात है, जिसपर भारतको गौरव और मान है और जिसके लिए अन्य देश उसका आदर करते हैं। भारतीय ललना ही भारतकी संपत्ति है, जिससे वञ्चित होकर भारतका सिर ऊँचा नहीं रह सकता। क्या तुम उसी भारत-भूमिसे उत्पन्न हुई बालिका हो ? और तिसपर भी

अपने माता-पिताकी इच्छाका उल्लङ्घन करके उस पुरुषसे विवाह करनेकी इच्छुक हो जिसके पितासे न केवल तुम्हारे पिताकी मैत्री नहीं, किन्तु घोर लड़ाई हो चुकी है ?

सुखदा—मैं बालपनसे सुनती आई हूँ कि मेरी प्रकृति सामान्य भारत ललनाओंसे अधिकांश भिन्न है। इसीसे कहती हूँ कि मैं माता-पिताको प्राण दे सकती हूँ परन्तु विवाहके विषयमें उनका चुनाव स्वीकार नहीं कर सकती। हृदय एक पुरुषको देकर शरीर दूसरेके अधिकारमें नहीं दे सकती।

महारानी—परन्तु तुम्हारा विवाह पवनके साथ किसी हालतमें भी नहीं हो सकता।

सुखदा—मैं आजीवन कुँवारी रहनेको उद्यत हूँ।

महारानी—इसमें लोक-लज्जाका भय है।

सुखदा—मैं मरनेको राजी हूँ।

महारानी—लोग क्या कहेंगे ?

सुखदा—उनके कहनेको रोकना ब्रह्माकी शक्तिसे भी बाहर है।

महारानी—जो कुछ हो, यह विवाह नहीं टलेगा।

सुखदा—तो क्या यह अन्तिम निश्चय है ?

महारानी—हाँ अन्तिम।

सुखदा—परिवर्तन नहीं हो सकता ?

महारानी—नहीं।

सुखदा—तो परिणामका उत्तरदायित्व भी आपपर ही है।

महारानी—देखा जायगा।

(दोनोंका क्रोधसे प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—आदित्यपुरमें राजा प्रह्लाद विद्याधरका महल

समय—दोपहर

[राजकुमार पवन और प्रहसित ।]

प्रहसित—राजकुमार, निश्चय यह आपका परम सौभाग्य है कि आपका विवाह राजकुमारी अञ्जनासे होना निश्चित हुआ है जो इस समय भारत-भरमें न केवल परम सुन्दरी ही हैं किन्तु परम सुशीला भी हैं।

पवन—परन्तु चित्र देखनेसे तो यह प्रतीत होता है कि वह वास्तविक नहीं है।

प्रहसित—वास्तविक नहीं तो क्या कल्पित है ?

पवन—मेरा यही विचार है।

प्रहसित—इस विचारका कोई कारण ?

पवन—कारण यह कि चित्रमें वह जितनी सुन्दरी दिखाई देती है, उतनी सुन्दरी इस संसारमें होना संभव नहीं। पुष्पकी भाँति कोमल, सूर्य्यकी भाँति तेजस्विनी, चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशमयी, गंगाके समान मनोहर। क्या ऐसी स्त्रियाँ इस संसारमें होती हैं? मेरा तो विचार है कि चित्रकारने हिमालयकी किसी पवित्र कन्दरामें बैठकर अत्यन्त परिश्रमसे मधुर संगीत, उच्चकोटिकी कविता और उत्तम प्रकारकी शिल्प-कलाको एक स्थानपर इकट्ठा कर दिया है और उसकी रसगर्भा लेखनीने उसे चित्रके रूपमें काग़ज़पर बखेर दिया है।

प्रहसित—इस कविताके लिए आपको बधाई देनी चाहिए।

पवन—नहीं मित्र, नहीं। तुम व्यंग करते हो, परन्तु मेरा सन्देह

रात्रिकी निद्रा और दिनका आराम भंग कर रहा है। क्या इसका कोई उपाय नहीं ?

प्रहसित—है।

पवन—क्या ?

प्रहसित—यह कि आप इस सन्देहको भंग कर दें, चित्त शान्त हो जायगा।

पवन—प्रहसित—

प्रह०—मुझे आश्चर्य्य है, आप इतने व्याकुल क्यों हो रहे हैं? यदि आपके पिता आपका विवाह किसी साधारण आकृतिकी राजकुमारीसे करनेको तैयार हो जाते, तो आपका क्या हाल होता ?

पवन—मित्र, मालूम होता है, तुमने इतने दिनों मेरी संगतिमें रहनेके पश्चात् भी मुझे नहीं पहचाना। मेरी महाराजपर अत्यन्त भक्ति तथा श्रद्धा है। मेरा विवाह यदि वे संसारकी सबसे अधिक कुरूपा स्त्रीसे कर देते तब भी मैं अप्रसन्न न होता, उनकी भक्तिमें समुद्रकी तरह अचल और हिमालयकी नाईं स्थिर रहता, उनके चुनावके सम्मुख सिर झुकाता और समझता कि मेरी आँखोंकी भूल है, मेरी बुद्धिमें विकार है, परन्तु उनको दोष कदापि न देता।

प्रह०—इतनी भक्तिका कारण ?

पवन—यह कि वे मेरे पिता हैं, और पिता पुत्रका अमंगल चाहे, यह असम्भव है। प्रहसित, सोचकर देखो। जो पिता सन्तानके लिए भूखा रहता है, देश छोड़कर विदेश जाता है, रोगमें दिन-रात एक कर देता है, प्यारमें पागल हुआ फिरता है, उसके लिए सब कुछ करनेको उतारू हो जाता है, क्या वह पुत्रका अशुभचिन्तक हो सकता है ?

जिसका हृदय प्रेमका स्रोत है, जिसका ध्यान निद्रामें भी पुत्रकी ओर खिंचा रहता है, क्या वह पुत्रको जान-बूझकर दुखी कर सकता है? जो दस्यु होकर भी सन्तानके लिए आर्य्य, लम्पट होकर भी सन्तानके लिए ऋषि और हत्याकारी होते हुए भी सन्तानके लिए प्रेम-पुञ्ज है, क्या उस पिताद्वारा पुत्रका बुरा हो सकता हैं? कदापि नहीं।

प्रह०—धन्य हो राजकुमार, धन्य हो। परन्तु विवाहके मामलेमें लोगोंका मत-भेद है। कुछ पुरुषोंका यह विचार है कि वर-वधूका आपसमें सहमत होना ही काफी है। परन्तु अन्य विद्वानोंकी यह सम्मति है कि उनको माता-पिता आदिकी सम्मति भी लेनी चाहिए। इसके सम्बन्धमें आपका क्या विचार है?

पवन—मेरा विचार दोनोंसे भिन्न है। यौवनके प्रवाहमें बहते हुए युवक और युवतियाँ केवल सुन्दरताकी ओर ही ध्यान देते हैं; परन्तु उन विषयोंकी ओर नहीं, जिनपर जीवनकी प्रसन्नता निर्भर है। यही कारण है कि बादमें फिर उनके घरोंसे दुखका धूआँ उठता दिखाई देता है। मेरी सम्मतिमें तो यह विषय माता-पितापर ही छोड़ देना चाहिए, वे जैसा चाहें करें। परन्तु यह आवश्यक है कि अन्तिम निश्चय करनेसे प्रथम वर-वधूसे भी सलाह ले लें कि हमारा यह विचार है, तुम्हें कोई एतराज तो नहीं।

प्रहसित—(स्वगत) कैसे उत्तम विचार हैं! राजकुमारने साधु-ओंका-सा स्वभाव पाया है।

पवन—प्रहसित!

प्रह०—हाँ राजकुमार!

पवन—मैं महेन्द्रपुर जाना चाहता हूँ। तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। एक ही दिनमें लौट आयँगे।

प्रह०—क्या अञ्जनाको देखनेके लिए? अपना सन्देह मेटनेके लिए?

पवन—हाँ, और तो कोई प्रयोजन नहीं है।

प्रह०—परन्तु आपका वहाँ जाना रीति-नीतिके अनुकूल नहीं है।

पवन—तो क्या किया जाय? भेस बदल लें?

प्रह०—ठीक है। इससे काम चल जायगा। न कोई पहचान सकेगा, न कोई आपत्ति होगी।

पवन—अच्छा तो कब चलें?

प्रह०—कल प्रातःकाल।

पवन—बहुत अच्छा, परन्तु भूल न जाना।

प्रह०—नहीं। भेस बदलनेकी सामग्री तय्यार रहे। मैं नियत समयपर उपस्थित हो जाऊँगा। अब जाता हूँ। (प्रस्थान)

पवन—(अञ्जनाका चित्र निकालकर) कितना सुन्दर और कितना पवित्र चित्र है कि देखकर न आँखें तृप्त होतीं हैं न हृदय सन्तुष्ट होता है। यदि वह ऐसी ही है, जैसी चित्रसे प्रतीत होती है, तो मेरा जीवन सुखकी, आशाकी और उल्लासकी नदी बन जायगा, जो पुष्पोंके घने वृक्षोंकी छायामें बह रही हो, और जिसपर देवतागण गगनसे आशीर्वादकी मनोहर तथा मधुर अमृत-धारा बरसा रहे हों। परमात्मा, मुझे इस सुन्दरीके योग्य बना और जो बोझ मेरे कन्धोंपर पड़नेवाला है, उसे उठानेका बल दे। (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—अमृतपुरसे कुछ दूरीपर सड़क
समय—तीसरा प्रहर

सुखदा—वे कहते हैं कि प्रेम एक रोग है, जो स्वास्थ्यको निर्बलता और शान्तिको अशान्तिमें परिवर्तित कर देता है, और अपनी दिखाई न देनेवाली उँगलियोंसे मनुष्यकी आँखोंके नीचे काली लकीरें खींचकर उसपर मृत्युकी छाया डाल देता है। ज्वर, अतिसार, यक्ष्मा, वायु, सबकी औषध है, मगर यह वह रोग है, जिसकी औषध वैद्योंकी किसी पुस्तकमें नहीं लिखी। परन्तु क्या समस्त संसारमें प्रत्येक जीव इस प्रेमकी लीलामें भाग नहीं ले रहा है? भँवर फूलको प्यार करता है, चकोर चन्द्रमाको प्यार करता है, पतंग दीपकको प्यार करता है, मक्खी मधुको प्यार करती है, मृग वीणाको प्यार करता है। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि जगदीश्वरने हरएक हृदयपर प्रेमकी मोहर लगा दी है? सब प्रेमी हैं। सब प्यार करते हैं। प्यार ही जीवनका उद्देश है। जो प्यारके नाटकमें सफल काम नहीं हो सके, वे बगुला-भगत बनकर दूसरोंको उपदेश सुनाना अपना कर्तव्य समझते हैं। सुखदा, इस उपदेशको हृदयमें स्थान न दे। गृहको त्याग, सम्बन्धियोंका ध्यान छोड़, और जिस प्रकार नदियाँ फूलोंकी क्यारियों और सुन्दर खेतोंकी पर्वाह न करके समुद्रमें जाकर अपने आपको मिटा देती हैं, उसी प्रकार तू भी प्रेम-पथपर पाँव बढ़ा और अपने प्रीतमको ढूँढ़नेका यत्न कर।

[पवनका प्रवेश]

हैं, यह कौन? वही। हाँ वही। बिल्कुल वही। मेरा खोया हुआ जीवन, मेरे जीवनकी आशा, मेरी आशाका प्रकाश, मेरे प्रकाशका चन्द्रमा।

पवन—बाल्यावस्थाका बीता हुआ समय आँखोंमें फिर रहा है और जिस तरह रात्रिके समय नीले आकाशपर धीरे धीरे प्रकाशपूर्ण तारे निकल आते हैं, ठीक उसी प्रकार स्मृतिके पटपर पुरानी घटनायें प्रकट हो रही हैं। सुन्दरी मैंने तुम्हें कभी देखा है। मैं—

सुखदा—नहीं नहीं, मैं कुछ सुना नहीं चाहती, सुनाना चाहती है। जिन शब्दोंको दस वर्षसे रोक रोक कर बंद रखती रही हूँ, उनको जिह्वासे निकल जाने दो। आज मेरी प्रसन्नताकी कटोरी पूर्ण रूपसे भर गई है, उसे छलक जाने दो। मेरी आँखें तुम्हें ढूँढ़ती थीं, उनको दर्शनामृत पी लेने दो। निराशामें आशाकी बिजली चमकी है, हृदयको मस्त हो लेने दो। प्राणेश्वर! प्राणाधिक! तुम कहाँ थे? तुमने मेरी सुधि क्यों न ली? परन्तु अब इन बातोंको समय नहीं रहा। अब हर्षका, आनन्दका और प्रसन्नतासे पागल हो जानेका समय है।

पवन—सुन्दरी, पगली न बनो और—

सुखदा—पगली न बनूँ? अब भी पगली न बनूँ? विश्वास करो कि मैं तुमको न पाकर होशमें रही हूँ; परन्तु अब मेरे मस्तिष्कमें अवश्य विकार हो जायगा।

पवन—राजकुमारी—

सुखदा—नहीं, अब मैं राजकुमारी नहीं हूँ। अब मैं तुम्हारे प्रेमकी, तुम्हारे रूपकी भिखारिनी हूँ। पवन, उस बाल्यावस्थाकी पुरानी घटनाको वास्तविक रूप दो और जिस प्रकार मैंने अपना सर्वस्व तुम्हारे लिए समर्पण कर रक्खा है, उसी प्रकार तुम भी मेरे बन जाओ।

पवन—बाल्यावस्थाकी क्रीड़ाओंको स्मरण रखना मूर्खता है।

सुखदा—तो क्या तुमने उस प्रेमके खेलको भुला दिया है?

पवन—हाँ, मेरे शरीरपर और उसके साथ ही हृदयपर किसी अन्यका अधिकार हो चुका है। मेरे और तुम्हारे मध्यमें अग्निका समुद्र गर्ज रहा है। इस लिए मुझे विस्मृतिके जलमें विसर्जन कर दो।

सुखदा—निष्ठुर! अन्यायी! यह तुम कह रहे हो? हाँ, तुम कह सकते हो। ये शब्द तुम्हारे मुखसे निकल सकते हैं, क्योंकि तुम मर्द हो और मर्द भूलना जानते हैं। परन्तु यह विद्या स्त्रियाँ नहीं जानतीं। वे प्रेम करना जानती हैं, बलिदान करना जानती हैं, परन्तु किसी घटनाको भूल जाना उनकी प्रकृतिके प्रतिकूल है। वे भूल नहीं सकतीं।

पवन—देवी, क्षमा करो। तुम्हारा एक एक शब्द सुनकर मैं भूमिमें गड़ा जा रहा हूँ। यदि तुम्हारे मनसे अपनी स्मृति धोनेके लिए मेरे रुधिरकी आवश्यकता हो तो दे सकता हूँ। परन्तु हृदय दूसरेका हो चुका है। उसपर मेरा कोई अधिकार नहीं है।

सुखदा—मैंने तुम्हारे लिए घर-बारका त्याग किया है।

पवन—मैं सब कुछ वापस दिला सकता हूँ।

सुखदा—देखो, मेरा दिल न तोड़ो। मैं दस वर्ष तक तुम्हारे स्वप्न देखती रही हूँ। अब मुझे निराश न करो। तुम्हारे रूपने मुझे प्रेमका रहस्य बताया है। अब तुम्हारे होठ मुझे यह उपदेश देते हैं कि मुझे भूल जाओ। यह असम्भव है।

पवन—परमात्मा! मुझे बल दो, ताकि मेरे निर्बल पैर इस आँधीका मुकाबला कर सकें। नेत्रोंको अन्धा कर दो, कानोंको बहरा कर दो, हृदयको पत्थर कर दो, ताकि मैं इस बावली सुन्दरीकी प्रेमभरी बातोंको न सुन सकूँ।

सुखदा—प्राणाधिक, मेरी रक्षा करो!

(चरणोंपर गिरकर अचेत हो जाती है।)

पवन—देवताओ, मेरी इस परीक्षामें सहायता करो। (सुखदासे) उठ देवी, उठ और मुझे अपने भाईके समान बिदा कर।

(सुखदा उठ खड़ी होती है।)

सुखदा—नहीं, तुम न जाओ। संसार फिर अन्धकारमय हो जायगा।

पवन—प्यारी बहन !

सुखदा—क्या यह सुपना है ?

पवन—नहीं। तुम, मैं, यह, वह, सब जाग रहे हैं। अपने आपको सँभालो। मेरी अवस्थाका ध्यान करो और मुझे जानेकी आज्ञा दो।

सुखदा—आज्ञा दूँ ?

पवन—हाँ, आज्ञा दो।

सुखदा—तो मुझे निराश हो जाना चाहिए ?

पवन—मैं विवश हूँ। अपनी भावी स्त्रीके प्रेमकी अमानतमें ख़यानत नहीं कर सकता।

सुखदा—मैंने अपने आपको तुम्हारे चरणोंपर गिराया, मगर तुमने मुझे घृणाकी ठोकर लगाई। मैंने स्वप्नमें भी अन्य पुरुषका विचार नहीं किया; परन्तु तुम्हें स्वप्नमें भी मेरा ध्यान न आया। मैंने तुम्हारे प्यारकी अग्निको शान्तिसे सहन किया, परन्तु तुमने अपने लिए नई कलीका चुनाव कर लिया। यही तुम्हारा न्याय है, यही तुम्हारा धर्म है, यही तुम्हारी रीति है। ओ सुन्दर साँपो ! आकाश तुमपर छाया क्यों करता है ? भूमि तुमको अपनी छातीपर क्यों लादे है ?

पवन—बहन, मैंने अपनी ओरसे कोई दोष नहीं किया, तो भी चूँकि तुम्हारे हृदयको मेरे कारण अनुताप पहुँचा है, इस लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

सुखदा—ठहरो, एक प्रश्नका उत्तर देते जाओ।

पवन—क्या ?

सुखदा—जानते हो महापाप कौन-सा है ?

पवन—ब्राह्मणको सताना ।

सुखदा—नहीं ।

पवन—गो-हत्या करना ।

सुखदा—नहीं ।

पवन—गुरु-वधका भागी होना ।

सुखदा—नहीं ।

पवन—तो ?

सुखदा—किसीका दिल तोड़ना, प्रेममें द्रोह करना । और यह वह पाप है, जिसका प्रायश्चित्त नहीं । तुमने मर्दोंका द्वार मेरे लिए बंद करके मुझको जगतमें अकेला छोड़ दिया है; तुमने मेरा दिल तोड़ा है । इस लिए याद रक्खो, तुम सुखकी नींद नहीं सो सकते । जिसके कारण तुमने मुझ अबलाको ठुकराया है, वह आरामसे जीवन व्यतीत नहीं कर सकती । स्त्रीको प्रेमके पश्चात् प्रतीकार प्यारा है । मेरा प्रेम तुम देख चुके, अब क्रोधकी बारी है । (तेजीसे प्रस्थान)

(पवन आश्चर्य-चकित होकर खड़ा रह जाता है ।)

चौथा दृश्य

स्थान—महेन्द्रनगरमें अञ्जनाका प्रमोद वन

समय—दोपहर

[फूलोंके झूलेमें राजकुमारी अञ्जना झूल रही है । आकाशपर मेघ छाये हुए हैं और उनमें बिजली खेल रही है । एक ओर सखियाँ खेलनेमें लीन हैं, दूसरी ओर बारहदरी है । पीछे झरनेसे जल गिर रहा है ।]

एक सखी—आज इस प्रमोद-वनपर कैसी बहार छाई है । ऐसा

प्रतीत होता है कि फूल अपने सौन्दर्य्य और यौवनको इस भूमिपरसे निछावर कर रहे हैं ।

दूसरी—और क्यों न करें । देखती नहीं, आकाशमें बिजली और मेघका विवाहोत्सव हो रहा है ।

तीसरी—लो, बहन चन्द्रमुखी आ रही हैं ।

चौथी—क्यों, चन्द्रमुखी, देव-मन्दिरमें प्रार्थना कर आई ?

पाँचवीं—क्यों बहन, क्या प्रार्थना की ? देवतासे काहेकी याचना की ?

पहली—भगतनजी, बता दो न, तुम्हारा हृदय कौन-सी वस्तु माँगता है ?

दूसरी—बालक खिलौना माँगता है, परन्तु युवकके लिए उसमें आकर्षण नहीं । दरिद्र धन माँगता है, परन्तु धनीको उसकी कदर नहीं । वृद्ध यौवन माँगता है, युवकको उसकी चाह नहीं । कुँवारी बर माँगती है, परन्तु ब्याही स्त्रीकी यह इच्छा नहीं । इस लिए यह तो—

सब—नन्हाँ-सा बालक माँगती है ।

पहली सखी—अजी आर्य्याजी, कुछ पति-प्रेमकी व्याख्या तो करो ।

दूसरी—क्यों बहन चन्द्रमुखी, क्या बहनोईजीने बात करनेसे रोक दिया है ? उत्तर तो दो ।

चन्द्रमुखी—उत्तर तो दूँ, मगर मेरी व्याख्याका यहाँ कोई अधिकारी भी हो !

तीसरी—लो । अब तो अधिकारी भी आ गया, अब तो मुँह खोलोगी न ?

[शान्ताका प्रवेश]

दूसरी—हाँ मेरी उदास मैना, अब तो बोलोगी न ?

शान्ता—कौन चन्द्रमुखी ? क्यों री, तूने सुसरालमें जाकर पत्र

लिखनेकी प्रतिज्ञा की थी ? झूठी कहींकी ! पतिप्रेममें इतनी बँधी, इतनी बँधी कि दो-चार घड़ियाँ भी नहीं निकाल सकी। एक पत्र भी न डाल सकी। यह विवाहके पश्चात् तेरे प्रेमका प्रथम परिचय है।

चन्द्रमुखी—नहीं, क्रोध न करो। मैं तुम्हें स्मरण तो बराबर करती थी, परन्तु पत्र लिखनेको—

शान्ता—जी नहीं चाहा या समय नहीं मिला ? देखो, इस समय जो बिजलीका हाल है, वही तुम्हारी प्रीतिकी मिसाल है।

(बिजली चमकती है। शान्ता गाती है।)

गीत

नवेलिन, प्रीति तनिक थिर नाहिं।
ज्यों सौदामिनि चमक दिखा निज, छिप जावे घनमाहिं॥
जबलौं संग रहैं सखियनके, तब लौं नाता नेह।
प्रेम-डोर फिर टूट जातु है, जब जावे पति-गेह।
भूल जातु हैं सखी-सहेलीं, पाय सुखद पिय-संग।
रंग बड़ो चढ़ि जात अपूरब, बदल जात सब ढंग॥

एक सखी—देखा, शान्ता कैसी चतुर कवि है !

दूसरी—चन्द्रमुखी, अब यदि तुमने जवाब न दिया तो हम यही समझेंगी कि बहनोईजी बिल्कुल नीरस पुरुष हैं। उन्होंने तुमको कुछ नहीं सिखाया।

चन्द्रमुखी—(हँसकर) शान्ता ! (गाने लगती है।)

गीत

अपूरब बड़ो प्रेमको ढंग।
है यह रहत एक रस नाहीं, बदलत रहत स्वरंग॥
देखहु यद्यपि हैं गिरितनया, प्रखर प्रवाहिनि गंग।
वासों नेह करत पर तबलौं, जबलौं वाके संग॥

वाको छाँड़ि बढ़त ज्यों आगे, गति औरहि है जाय।
नाता नेह तोड़के सबसों, मिलत सिंधुमहँ धाय ॥
याही दशा होत नारिनकी, पीय-संग निज पाय।
नाता नेह त्याग सखियनसों, सबको देति भुलाय।

शान्ता—अच्छा गंगाबाईजी, अब आप महात्मा समुद्र-प्रसादके पास जा रही हैं। गरीब खेतियोंका क्या है, उनका भी निर्वाह हो ही जायगा।

चन्द्रमुखी—निर्वाह नहीं हो सकता। इसी लिए तो वे अपना मुख ऊँचा किये हुए इन्द्रदेवताकी प्रतीक्षा किये हुए हैं।

शान्ता—हूँ! मैं तो विवाह ही न करूँगी।

चन्द्रमुखी—जी हाँ, कुँवारी कन्यायें इसी प्रकार लजाया करती हैं, शरमाया करती हैं। परन्तु विवाहके समय यह इन्कार धरा ही रह जाता है।

पहली सखी—विवाह न करोगी तो क्या करोगी?

शान्ता—जोगन बनूँगी।

दूसरी—जी हाँ, जोगन बनना इतना सहज होता तो संसारमें चारों ओर जोगनें ही जोगनें दिखलाई देतीं।

(अञ्जनाका झूलेसे उतरकर धीरे धीरे सखियोंकी ओर आना।)

अञ्जना—अहा! चन्द्रमुखी है। कहो सखी! पति-गृहसे कब लौटीं? कुशल तो है? तुम्हारी सहेली शान्ताका भी जल्दी विवाह होनेवाला है। (शान्ताकी ओर देखकर) क्यों? तुम उदासिन क्यों हो गई हो?

शान्ता—इसी लिए कि मेरा विवाह होनेवाला है।

अञ्जना—इससे प्रयोजन?

शान्ता—प्रयोजन यह कि मुझे विवाहकी चाह नहीं। मेरी तो

यह इच्छा है कि जिस प्रकार मोर बनमें अकेला नाचता है और अपने आपको देखकर अपने मनमें प्रसन्न होता है, उसी प्रकार अकेले जीवन व्यतीत कर दूँ। जिस प्रकार जंगलका फूल एकान्तमें खिलता है और अपनी बहार आप ही देख कर सूर्यकी अन्तिम किरणकी भाँति मुरझा जाता है, उसी प्रकार अकेली ही जीवन-यात्रा समाप्त कर दूँ।

अञ्जना—सखी, यह तुम्हारी भूल है। यह विचार बिल्कुल निर्मूल है। देखो स्त्री और पुरुष रथके दो पहिये हैं। जबतक दोनों इकट्ठे न हों तबतक उन्नतिके मार्गपर चलना कठिन ही नहीं, असम्भव है। जिस प्रकार ऋतुकी गुलाबसे, मोतीकी आबसे, रेशमकी नरमीसे, सूर्य्यकी गरमीसे, बहार है, उसी प्रकार पुरुष स्त्रीका शृंगार है।

शान्ता—परन्तु आश्चर्य है; प्रायः स्त्रियाँ विवाहके पश्चात् माता-पिता भाई-बन्धु सबकी अपेक्षा पतिका अधिक सम्मान करती हैं। मेरी बुद्धि कहती है कि यह ठीक नहीं।

अञ्जना—(हँसकर) परन्तु मेरी बुद्धि कहती है कि तुम्हारी बुद्धि भूल करती है। कारण यह कि पति संसारमें स्त्रीके लिए ईश्वरके समान है। जो उसे त्यागकर दूसरेको रिझाया चाहती है, वह मूर्ख है। तुम ही कहो, जो पुरुष सोनेके डलोंको छोड़कर कंकरोंमें भटकता फिरे उसके विषयमें तुम्हारी क्या सम्मति है? जो पुरुष प्रकाशमान सूर्य्यकी ओरसे आँखें बंद करके दिनके समय दीपकसे काम लेना चाहे, उसके बारेमें तुम्हारा क्या विचार है?

(शान्ता शिर झुका लेती है।)

चन्द्रमुखी—क्यों तोते, अब बोलता क्यों नहीं?

अञ्जना—(बातका रुख बदलनेके ढंगसे) चलो, उस बारहदरीमें चल कर विश्राम करें। (सबका प्रस्थान)

(एक चित्र हाथमें लिये हुए पवनका प्रवेश)

पवन—(चित्रकी ओर देखकर) तू कौन है ? तू किसका चित्र है ? तेरे मुखमण्डलपर किसका रंग झलकता है ? तेरे सुन्दर होठोंपर किसकी सुरखी खेलती है ? तूने मेरी प्रसन्नता, निद्रा और शान्ति भंग कर दी है। भला मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ?—अँगुलियाँ कहती हैं यह भोजपत्र है। आँखें कहती हैं यह देवी अञ्जनाका चित्र है। हृदय कहता है यह सुन्दरी है। लोग कहते हैं यह मेरी है। यदि तू मेरी है, तो मुझसे बोलती क्यों नहीं ? मुझसे प्रश्न कर कि मैं विवाहसे पहले ही इस नगरमें क्यों आ गया हूँ ? आहा ! यह इस प्रकार मौन साधन कर देख रही है कि मेरी व्याकुलतामें कितनी वृद्धि हो सकती है !

[प्रहसितका प्रवेश]

पवन—प्रहसित, कुछ पता लगा ?

प्रह०—नहीं।

पवन—तो फिर ?

प्रह०—आदित्यपुर लौट चलना चाहिए। ऐसा न हो कि हमें कोई पहिचान ले। यदि ऐसा हुआ तो बहुत बदनामी होगी।

पवन—प्रारब्धमें न हो तो गंगा-तटसे भी प्यासा ही जाना पड़ता है। (कुछ देखकर) परन्तु यह क्या ! हम तो अञ्जनाकी वाटिकामें हैं !

(दीवारपर 'अञ्जना-वाटिका' लिखा दिखाई देता है।)

प्रह०—राजकुमार, यह बहुत बुरी बात है। यदि किसीपर भेद खुल गया तो हमारी बदनामी तो होगी ही, किन्तु राजकुमारी अञ्जनाका सच्चरित्र भी कलङ्कित हो जाना सम्भव है। इस लिए अपने आपपर नहीं तो उस अबलापर दया करो। अपनी भावी भार्य्यापर

कृपा करो, और जितनी जल्दी हो सके इस वाटिकासे बाहर निकल चलो—देखो ये आवाज़ें कैसी आ रही हैं! लो वह कोई आ रहा है। अब क्या किया जाय?

पवन—घबराते क्यों हो? आओ, इस वृक्षकी ओटमें हो जायँ।

(पवन और प्रहसितका वृक्षकी ओटमें हो जाना)

[अञ्जनाका सखियों सहित प्रवेश]

एक सखी—राजकुमारी, बधाई हो।

दूसरी—पवन जैसा सुन्दर तथा बलवान् शूरवीर पति मिलना परम सौभाग्यकी बात है। इस लिए सौ सौ बार बधाई हो।

तीसरी—क्यों राजकुमारी, विवाहके पश्चात् हमें भी याद रखोगी या बिलकुल ही भूल जाओगी?

अञ्जना—कृपा करके इस वार्तालापको समाप्त करो, और मेरा सिर न खाओ। (धीरे धीरे प्रस्थान।)

एक—विवाहका विचार तो पहले विद्युत्प्रभके साथ था; परन्तु चूँकि ज्योतिषियोंने उसको दीर्घायु नहीं बताया है इस लिए हमारे महाराजने अपनी लाड़ली पुत्रीका विवाह राजकुमार पवनके साथ ठहराया है।

दूसरी—विद्युत्प्रभ बहुत सुन्दर है।

तीसरी—परन्तु पवन बहुत वीर है।

चौथी—इसपर भी मेरी तो यही सम्मति है कि अञ्जनाका विवाह विद्युत्प्रभके साथ होता तो अच्छा था।

पाँचवीं—परन्तु क्यों?

शान्ता—इसका कारण मुझसे न सुन लो—

बुरा है वृक्ष कीकरका फला ही बूँट अच्छा है।
समन्दर विषका हो तो उससे अमृत-घूँट अच्छा है।

सब—इस कविताकी बलिहारी !

शान्ता—या इसको यों कह लो—

ज़ियादे कीमती है एक हीरा लाख पत्थरसे।
है अच्छा घूँट अमृतका, हलाहलके समन्दरसे ॥

दूसरी—क्यों बहन, यह कविता कबसे सीखी ? एक एक शब्द तौलकर रक्खा हुआ है। वाहवा ! बलिहारी बलिहारी !

(धीरे धीरे सबका प्रस्थान)

पवन—तुमने कुछ सुना ?

प्रहसित—हाँ, किसी युवतीने कहा है कि विष-समन्दरसे अमृतका एक घूँट ही अच्छा है।

पवन—इसका प्रयोजन भी समझते हो ?

प्रह०—आप अब यहाँसे खिसकनेकी कृपा करें। प्रयोजन समझनेकी कोई आवश्यकता नहीं। (वाटिकामें घूमने लगता है।)

पवन—देख लिया कि वह वास्तवमें सुन्दरी है। जो कुछ चित्रमें है उससे भी सुन्दरी है; परन्तु इसके साथ ही अभिमानकी मात्रा बहुत बढ़ी हुई है। ये शब्द उसीके थे। नहीं तो सखियाँ सहेलियाँ बलिहारी बलिहारी करके खुशामद न करने लग जातीं। इतना गर्व, इतना अभिमान ! इस वाटिकामें नीले आकाशके नीचे हिमालयकी नाईं स्थिर-भावसे महारानी केतुमतीका पुत्र पवन प्रतिज्ञा करता है कि इस अभिमानकी मूर्तिका विवाहके पश्चात् बारह वर्ष तक न मुँह देखेगा, न उससे बात ही करेगा। यह प्रतिज्ञा एक क्षत्रियका व्रत है, पत्थरकी लकीर है। प्रहसित !

प्रह०—राजकुमार।

पवन—चलो चलें, यहाँ आना अच्छा न हुआ।

(दोनोंका प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—रास्ता

समय—प्रातःकाल

(विद्युत्प्रभ और उसके मित्र बातचीत कर रहे हैं ।)

विद्युत्०—दोनों बार हार हुई ।

एक मित्र—हाँ, दोनों बार हार हुई ।

दूसरा—और दोनों बार पवन ही इसका कारण हुआ ।

तीसरा—यह आश्चर्य्यका विषय है ।

चौथा—आश्चर्य्यका नहीं, यह उसकी शरारत है ।

पाँचवाँ—अब आपका क्या विचार है ?

पहला—और किसी सुन्दरी युवतीसे ब्याह कर लेंगे । भारतमें अञ्जना और सुखदाके सिवाय और रमणियाँ भी हैं और उनसे अधिक सुन्दरी, अधिक सुशीला ।

दूसरा—यह तो सत्य है । फिर भी राजकुमारका जी तो लेना उचित है कि उनकी अब सम्मति क्या स्थिर हुई है ?

विद्युत्०—क्या पूछते हो ?

दूसरा—यह कि अब आपका विचार क्या है ?

विद्युत्०—आप सोचो कि जो अपना सर्वस्व हार चुका हो, उस जुवारीका क्या विचार हो सकता है ? जिसको युद्ध-क्षेत्रमें अपमानित किया गया हो, उस योद्धाका क्या विचार हो सकता है ? जिसके मुँहसे शिकार छीन लिया गया हो, उस सिंहका क्या विचार हो सकता है ? मैं अपने जीवनका एक एक क्षण इस घड़ीसे प्रतीकारके लिए

समर्पण करता हूँ। घरका सुख, धनका जीवन, राज्यका आनन्द, सबका परित्याग करता हूँ और—

[एकाएक सुखदाका प्रवेश]

सुखदा—ठहरो, मैं तुमसे कुछ कहा चाहती हूँ।

विद्युत्०—उन्मादिनी, तू कौन है ?

सुखदा—एक परित्यक्ता स्त्री।

विद्युत्०—मुझसे क्या चाहती है ?

सुखदा—यह अकेलेमें कहूँगी।

विद्युत्०—(मित्रोंसे) तुम जरा परे चले जाओ।

(मित्रोंका प्रस्थान)

सुखदा—क्या तुम राजकुमार विद्युत्प्रभ हो ?

विद्युत्०—हाँ, और तुम ?

सुखदा—अमृतपुरकी राजकन्या सुखदा।

विद्युत्०—सुखदा ?

सुखदा—हाँ हाँ सुखदा।

विद्युत्०—मेरा अपमान करनेवाली सुखदा, मुझे तिरस्कारकी ठोकर लगानेवाली सुखदा, अपने माता-पिताकी इच्छाका उल्लंघन करनेवाली सुखदा, मेरे सम्मुख क्यों आई हो ? तुम्हारे साथ बातचीत करनेमें भी लज्जा आती है।

सुखदा—मैं तुम्हारे निकट सहायताके लिए आई हूँ।

विद्युत्०—सहायताके लिए ? मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।

सुखदा—मैं सहायता लेने नहीं, देने आई हूँ।

विद्युत्०—मतलब ?

सुखदा—विवाहके सम्बन्धमें तुम्हारा दो बार तिरस्कार हुआ है।

विद्युत्०—हाँ ।

सुखदा—और वह पवनके कारण हुआ है ?

विद्युत्०—हाँ ।

सुखदा—तुम प्रतीकार चाहते हो ?

विद्युत्०—हाँ ।

सुखदा—प्रतीकारके लिए सब कुछ करनेको उद्यत हो ?

विद्युत्०—हाँ हाँ ।

सुखदा—तो मैं तुम्हारी सहायता करूँगी । तुम परित्यक्त पुरुष हो, मैं परित्यक्ता स्त्री हूँ । आओ, दोनों मिलकर काम करें । तुम अग्नि हो, मैं तुम्हारी ज्वाला बनूँगी । तुम भयानक समन्दर हो, मैं तुम्हारी लहर बनूँगी । तुम विषधर सर्प हो; मैं तुम्हारा दाँत बनूँगी । तुम्हारा जो तिरस्कार कर चुकी हूँ, उसका बदला चुकाऊँगी और पवन और अञ्जनाका जीवन अन्धकारमय बना दूँगी ।

विद्युत्०—तुम क्या करोगी ?

सुखदा—जो कुछ तुम चाहोगे मैं वही करूँगी। मनोरथ-सिद्धिके लिए संसारमें ऐसा कोई कर्म नहीं जिसका करना मेरे हाथ अस्वीकार करें।

विद्युत्०—यदि इसके लिए असत्य भाषण करना पड़े तो ?

सुखदा—करूँगी ।

विद्युत्०—चोरीकी आवश्यकता हो तो ?

सुखदा—परहेज न होगा ।

विद्युत्०—हत्या करनेसे काम चलता हो तो ?

सुखदा—सो भी कर डालूँगी ।

विद्युत्०—तब मुझे सफल-काम होनेसे रोकनेवाली शक्ति उत्पन्न ही नहीं हुई। याद रक्खो, विजय यत्नकी छाया है और पराजय निर्बलताका परिणाम है। जो साहसी है, जो यत्न करते हैं, जो परिश्रममें निरन्तर लीन रहते हैं, जो साधारण बातोंपर हृदय कमज़ोर नहीं करते, विजय उनको जय-माला पहिनाती है, और यश उनका कीर्तन करता है। परन्तु जिनका जी छोटा है, जीमें यथेष्ट बल नहीं, कठिन कामोंमें जो हिम्मत हार देते हैं, संसारके संग्राममें वे निर्जीव लोथकी नाईं मसले जाते हैं, और लोग उनके शरीरोंको पद-दलित करते हुए ऊपरसे गुजर जाते हैं।

सुखदा—तुम्हारे शब्द भयानक हैं।

विद्युत्०—साहससे काम लो तो दुनियामें तुम्हें किसीका भी भय न रहेगा।

सुखदा—तो हमें अपना काम कहाँसे आरम्भ करना चाहिए, पहले इसका निर्णय हो जाना ठीक होगा।

विद्युत्०—मेरे विचारमें अञ्जनाका विवाह पवनसे होनेमें थोड़ा समय ही बाकी है।

सुखदा—हाँ।

विद्युत्०—तो हमारे पाखण्ड-काण्डका प्रारम्भिक पर्दा आदित्यपुरके राजमहलमें उठना चाहिए।

सुखदा—अर्थात् हमारा कोई भेदिया वहाँ रहे।

विद्युत्०—नहीं, भेदियेसे काम न चलेगा, वहाँ स्वयं तुम्हारी उपस्थितिकी आवश्यकता है। भेस बदल डालो, नाम कोई और रख लो, और आज ही आदित्यपुरको प्रस्थान कर दो।

सुखदा—बहुत अच्छा। मैं वहाँ दासी बनकर रह जाऊँगी और ललिता कहकर अपना परिचय दूँगी।

विद्युत्०—बस, अब तुम राजकन्या नहीं, दासी हो; सुखदा नहीं, ललिता हो; समझ गई ?

सुखदा—खूब अच्छी तरह।

विद्युत्०—सुखदा!

सुखदा—वह मर चुकी है और उसकी अस्थियोंसे एक दासीका जन्म हुआ है। उसे सम्बोधन करना है, तो ललिता कह कर करो। अब वह राजकुमारी नहीं दासी है, जिसके सम्मुख जीवन-भरका काम पड़ा है, और वह उसे आरम्भ करनेको है।

विद्युत्प्रभ—शाबाश, ललिता, शाबाश। मैंने तुम्हारी परीक्षा करनेके लिए ही यह कहा था। इसमें तुम उत्तीर्ण हुई।

सुखदा—तो मैं अब रत्नपुरको जाऊँ। मेरा जीवन प्रतीकारके लिए समर्पित हो चुका है, उसे अन्य बातोंमें नष्ट नहीं कर सकती। तुम मुझे कहाँ और कब मिलोगे ?

विद्युत्—यह मैं आप देख लूँगा। पहले तुम वहीं अपने प्रति विश्वासका भाव उत्पन्न करो।

(सुखदाका प्रस्थान)

विद्युत्०—अद्भुत स्त्री है, कैसी वेधड़क, मुँहफट और उन्मादिनी है। कल जिसे प्रेम करती थी, जिसके नामकी माला जपती थी, जिसके चित्रको हृदयपर अङ्कित किये हुए थी, आज क्रोधमें उससे ही बदला लेनेकी इच्छासे सब कुछ करनेको उद्यत है! अन्धी, उन्मादिनी, पगली!

[मित्रोंका प्रवेश]

एक—राजकुमार, यह कौन थी ?

विद्युत्०—कड़कती हुई बिजली, चमकती हुई तलवार, धधकती हुई अग्नि।

दूसरा—हम कुछ नहीं समझे ।

विद्युत्०—मेरे रोगकी ओषधि, मेरे घावका मरहम, मेरे हृदयकी शान्ति ।

तीसरा—अब भी अस्पष्ट है ।

विद्युत्०—अमृतपुरकी राजकन्या सुखदा ।

चौथा—सुखदा ?

पाँचवाँ—क्या सुखदा ?

पहला—कौन-सी सुखदा ?

दूसरा—जिसने आपसे विवाह करना अस्वीकार किया था, वह तो नहीं ?

तीसरा—वह नहीं हो सकती ।

चौथा—हाँ, यह तो असम्भव है । वह नहीं हो सकती ।

पाँचवाँ—उसके साथ तो सुना है पवनका विवाह हो गया है ।

विद्युत्०—नहीं, वही थी । पवनने इसका परित्याग करके महेन्द्रपुरकी राजकुमारी अञ्जनाके साथ विवाह करनेका निश्चय किया है ।

पहला—ठीक है, मैं समझ गया ।

दूसरा—मेरा पहले ही यह विचार था कि यह वही है ।

तीसरा—निर्लज्जा अब फिर आपसे विवाह करना चाहती है ।

चौथा—जिसे पहले अस्वीकार कर चुकी है ।

पाँचवाँ—यह भी हो सकता है ?

पहला—नहीं नहीं, यह असम्भव है ।

दूसरा—राजकुमार उसकी प्रार्थना कभी स्वीकार न करेंगे ।

विद्युत्०—तुम सब भूल रहे हो। वह पवनसे तिरस्कारका बदला लेनेपर उतारू हुई है और उसके रुधिरकी प्यासी हो रही है । अब

मुझे उसपर शोक और क्रोध नहीं रहा, क्यों कि हम दोनों एक ही पथके पथिक—एक ही व्रतके व्रती हैं। वह तरवार है, मैं उसे सान-पर चढ़ाऊँगा, वह अग्नि है, मैं उसे भड़काऊँगा। वह सर्पिनी है, मैं उसे क्रोधमें लाऊँगा और जिन्होंने मेरा तिरस्कार किया है उनसे बदला लेकर अन्तमें जिस प्रकार समझदार पुरुष काँटेसे काँटा निकाल कर काँटेको अग्निमें फेंक देता है, उसी प्रकार इसे भी दण्ड दिये बिना न रहूँगा। (वेगसे प्रस्थान)

(मित्रोंका आश्चर्य्यमें खड़े रह जाना)

छट्ठा दृश्य

स्थान—राजा महेन्द्ररायका अन्तःपुर

समय—दोपहर

(अञ्जना और उसकी सखियाँ उदासीन भावसे बैठी हैं। सामने गानेवालियाँ गा रही हैं।)

खमाच।

आज हुआ घर बार पराया।
माता पिता बन्धु सब छूटे, छूटी ममता माया॥
अपने घरका आँगन छूटा, छुटी स्नेहकी छाया।
छूटीं सखियाँ जिनसे मिलकर बरसों समय बिताया॥
अपनी मरजी सोना छूटा, अपनी मरजी खाना।
जो मन चाहे करना छूटा, छुटी प्रेमकी माया॥
सास ससुरकी जेठ पतीकी आज्ञा पालन करना।
वही हुआ तेरा घर बेटी, यह घर होत पराया॥
सँभल सँभल पग धरना बेटी, पर-घर अब है रहना।
सास ननद तानें मारेंगी, यदि कछु अवगुण पाया॥
आज हुआ घर-बार पराया॥

अञ्जना—सच है, आज सब कुछ छूट गया। माता पिता भ्राता बन्धु सखियाँ सबको छोड़कर आज नये स्थानको जाना होगा। यह जन्म-स्थान जिसके एक एक परमाणुसे प्रेमकी सुगन्धि आ रही है, यह महल जिसकी एक एक ईंट मुझे सखीके समान प्यारी है, यह भूमि जिसका एक एक चप्पा मेरा लाखों बारका देखा हुआ है, यह नगर जिसका एक एक महल मेरे अपने घरके सदृश है, आज इन सबको छोड़ना होगा। लोग कहते हैं, यह शुभ मुहूर्त्त है, परन्तु फिर भी मेरी आँखें रो रही हैं, मेरा हृदय शोकमें मग्न है। (आँसू पोंछती है।)

एक सखी—राजकुमारी, यह अनुचित है।

दूसरी—ऐसे शुभ अवसरपर रोती क्यों हो राजकुमारी ?

तीसरी—दूसरोंको कई बार उपदेश देती रही हो कि विवाहोत्सवपर रोना बेहूदा बात है, अब स्वयं रो रही हो !

अञ्जना—वृक्षका पत्ता तोड़ो, पानी जरूर निकलेगा। मिट्टीका ढेला तोड़ो, आवाज़ जरूर निकलेगी। पक्षीका बच्चा ले लो, पक्षी जरूर चीखेगा। परन्तु यह सब क्यों ? वृक्ष रोता है, मिट्टीका ढेला दुहाई देता है, पक्षी हृदयका शोक प्रकट करता है। फिर विचार करो कि यदि प्रकृतिका नियम ही यह है, तो कैसे हो सकता है कि मनुष्यका बच्चा अपने माता पितासे सर्वदाके लिए बिछुड़नेको हो और उसकी आँखसे जलके दो चार बिन्दु न निकलें ? गला शोकसे न भर आवे ?

सखी—परन्तु क्या तुम माता पितासे सदाके लिए बिछुड़ रही हो ?

अञ्जना—हाँ सदाके लिए।

तीसरी—सदाके लिए ?

चौथी—यह तो असम्भव है।

पाँचवीं—तुम कई बार यहाँ आओगी।

अञ्जना—यह ठीक है कि मैं कई बार यहाँ आऊँगी। परन्तु मेरा वह आना दूसरे प्रकारका होगा। जिस ढंगसे अब यहाँ रह रही हूँ, जिस अधिकारसे अब जिस वस्तुकी आवश्यकता होती है, माँग लेती हूँ, जो चाहती हूँ करती हूँ, जिस प्रकार चाहती हूँ अपना सुभीता देख लेती हूँ, जिस तरह अब प्रत्येक वस्तुपर अपना स्वत्व समझती हूँ, कहती हूँ, बताती हूँ, क्या यह अवस्था फिर भी इसी प्रकारकी रहेगी? नहीं। दूसरी बार आऊँगी, तो अपने घरके सदृश नहीं, परन्तु अतिथिके समान आऊँगी। माता-पिताका मन बदले या न बदले, परन्तु मेरे मनमें, वचनमें, कर्ममें जो अब स्वत्व जतानेका स्वभाव है, वह नहीं रहेगा। अब दूसरी बार आऊँगी तो पराई बनकर आऊँगी। इसीसे कहा है कि माता-पिता सर्वदाके लिए छूटे। यह जन्म-भूमि सर्वदाके लिए छूटी। यह नगर पराया हुआ, मैं पराई बनी।

एक सखी—कैसे हृदय-विदारक शब्द हैं।

दूसरी—परन्तु कितने सत्य और सरल हैं।

तीसरी—राजकुमारी साक्षात् लक्ष्मी है।

चौथी—वर भी तेजस्वी वीर है।

पाँचवीं—परमात्मा इस जोड़ेको सदा प्रसन्न रक्खे।

सब—तथास्तु।

[वसन्तमालाका रोते रोते प्रवेश]

अञ्जना—वसन्तमाला!

एक सखी—वह नहीं बोलेगी।

दूसरी—रूठी हुई है।

तीसरी—रो रही है।

चौथी—नहीं, धूआँ लग रहा है।

पाँचवीं—उत्तर तो दो।

अञ्जना—वसन्तमाला !

वसन्तमाला—(रोते रोते) हाँ राजकुमारी ।

अञ्जना—रोती क्यों हो ?

एक सखी—विवाह न होनेके कारण ।

दूसरी—हो जायगा ।

तीसरी—धीरज रक्खो ।

चौथी—बस एक मासके अन्दर अन्दर ।

पाँचवीं—अवश्य हो जायगा ।

अञ्जना—वसन्तमाला, उत्तर दो ।

वसन्तमाला—जबसे तुम्हारे जानेका सुना है, मेरे दिलमें न जाने क्या हो रहा है ।

एक सखी—कुछ गड़बड़ है ।

दूसरी—पीड़ा होती है ।

तीसरी—सौंफका अर्क पीओ ।

चौथी—नहीं, गाजरका हलवा खाओ ।

पाँचवीं—नहीं, अजवायन फाँको ।

अञ्जना—क्या बक बक लगा रक्खी है । बात भी करने दोगी या नहीं ? जाओ, मैं एकान्तमें इससे बात करूँगी ।

दूसरी—सचमुच ?

तीसरी—समझ लो, चली गई ।

चौथी—और एकान्त हो गया ।

पाँचवीं—हम कुछ न सुनेंगी, जो कहना है कह लो ।

अञ्जना—(हँसकर) बहुत दिक न करो मुझे, जरा परे चली जाओ ।

(सखियोंका प्रस्थान)

वसन्तमाला—आपने मुझ अनाथको प्यार-दुलारसे पाला है, हर समय मेरा दिल रक्खा है, बहनके समान मुझसे सलूक किया है, मैं आपके बिना और किसीको नहीं जानती। मैं यहाँ नहीं रहूँगी, मुझे अपने साथ ले चलो।

अञ्जना—तुम्हें यहाँ किसी प्रकारका कष्ट न होगा, इस बातका विश्वास रक्खो।

वसन्तमाला—परन्तु आपके बिना यहाँ मेरा दिल नहीं लगेगा।

अञ्जना—धैर्य्य धरो।

वसन्तमाला—मैं हाथ जोड़ती हूँ, अनुरोध करती हूँ, आपसे भिक्षा माँगती हूँ। कृपा करके मुझे यहाँ न छोड़ जाओ, अपने साथ ले चलो।

अञ्जना—यह कैसे हो सकता है ?

[महारानी हृदयसुन्दरीका प्रवेश]

महारानी—अञ्जना !

अञ्जना—हाँ माताजी।

महारानी—यह पगली कलसे बराबर रो रही है। तुम्हारे पीछे और भी तंग करेगी !

अञ्जना—मैं भी इसे समझा रही थी।

महारानी—नहीं, इसे अपने साथ ही ले जाओ।

वसन्तमाला—बस, अब तो महारानीजीने भी आज्ञा दे दी है। असबाब बाँध लूँ ?

महारानी—हाँ जाओ, तयारी करो।

(वसन्तमालाका प्रस्थान)

[महाराजा महेन्द्रराय, राजकुमार पवन और महाराजा प्रह्लाद विद्याधरका प्रवेश]

महेन्द्रराय—बेटी, ये तुम्हारे श्वसुर हैं, प्रणाम करो।

अञ्जना—(हाथ जोड़ कर विनीत स्वरसे) प्रणाम करती हूँ, पिताजी।

विद्याधर—सौभाग्यवती भव, आयुष्मती भव।

महेन्द्रराय—महाराज, इस समय मेरा हृदय उमड़ रहा है, इसीसे कुछ कह नहीं पाता। केवल इतना ही कहता हूँ कि अञ्जना बालिका है। व्यवहारसे अपरिचित, और संसार-मर्यादासे सर्वथा अनभिज्ञ है। इसपर कृपादृष्टि रखिएगा। और यदि कोई अपराध इससे हो जाय, तो इसे अबोध बालिका जानकर क्षमा कर दीजिएगा।

विद्याधर—राजन्, मैं अञ्जनाके गुणोंपर चिरकालसे मुग्ध हूँ। यह बालिका नहीं, साक्षात् लक्ष्मी है, देवी है, गुणोंकी खान है। इस हीरेकी कनीको पाकर मैं आज फूला नहीं समाता। यह सुमंगला भाग्यवती जहाँ जायगी, वहींपर यशःकीर्ति और आनन्द साथ साथ जायगा। पवन मेरा एक ही पुत्र है। मैं इसे उससे भी अधिक प्यार करूँगा। पुत्रीके समान चाहूँगा।

महेन्द्रराय—पुत्री, तूने मेरी आज्ञाका आज तक पालन किया है। इस समय भी दो चार बातें ध्यानसे सुन और उनको गाँठमें बाँध ले। आज तक तू हमारी थी, हमारा तुझपर अधिकार था। परन्तु अब ये (प्रह्लाद विद्याधर) तुम्हारे पिता हैं और यह कुमार (पवन) तुम्हारे पति हैं। इन्हींका तुझपर अधिकार है—इन्हींका स्वत्व है। यह (पवन) ही तुम्हारा इहलोक और यही परलोक हैं। यही तुम्हारा धर्म, और यही तुम्हारा सुख हैं। इनका चित्र हृदयपर अङ्कित करो और अपने जीवनका एक एक पल इनके और इनके विचारके प्रति समर्पण कर दो। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें और तुम दोनों धर्म, यश और धन सम्पत्तिमें खेलते हुए और संसारके लिए आदर्श बनते हुए जीवन-यात्राको पूर्ण करनेका प्रयत्न करो। मेरा आशीर्वाद है।

हृदयसुन्दरी—पुत्री, पिताके उपदेशके एक एक अक्षरको हृदयमें स्थान देना। आजसे सास-ससुरको माता-पिताके समान समझना, उनकी आज्ञाका पालन करना, और पतिका देवताके समान पूजन करना ही अब तुम्हारा धर्म है।

विद्याधर—पुत्र पवन, पिताका धर्म अब मुझको प्रेरणा करता है कि मैं तुमको एक आध उपदेशकी बात कहूँ। तुम स्वयं समझदार हो। आज तक स्वाधीन, चिन्तारहित और संसारके व्यवहारसे पृथक् थे। अब वह स्वाधीनता नहीं रही। समाजने तुम्हारे कंधोंको यथेष्ट बलवान् देखकर उनपर एक सजीव व्यक्तिका बोझा रख दिया है और तुमने पवित्र मंत्रोंद्वारा उस बोझेको उठाना स्वीकार कर लिया है। यह साधारण बोझा नहीं, जीवन-भरके लिए एक उत्तरदायित्व, है, जिसे सफलतासे निभाना ही तुम्हारा उद्देश्य है। पहले तुम एक थे, अब दो हो। पहले तुम्हें केवल अपनी चिन्ता थी, अब तुम एक अन्य जविके सुख-दुःख, उन्नति-अवनति और यश-अपयशके लिए भी उत्तरदाता हो। ब्रह्मचर्यका समय बीत चुका। अब तुम्हें एक मित्र दिया गया है। जो तुम्हारे एकान्तको प्रकाशित, तुम्हारे हृदयको प्रफुल्लित, और तुम्हारे जीवनको आनन्दमय बना देगा उसके द्वारा तुम्हारे सुखोंमें वृद्धि और तुम्हारे दुःखोंमें कमी होगी। तुम उसका और वह तुम्हारा सुभीता देखेगा। यही गार्हस्थ्य है, यही विवाह है, यही संसार है, यही प्रेमका पहला अक्षर है, यही परोपकारका पहला पाठ है, यही जीवन-यात्राकी पहली मंजिल है। इसीकी देवताओंने महिमा वर्णन की है। इसीको शास्त्रोंने चारों आश्रमोंमें उच्च पदवी दी है।

दूसरा अङ्क

स्थान—रामनाथसे कुछ दूर सुन्दरा नदी

समय—रात्रि।

(सेनाका पड़ाव। थोड़े थोड़े अन्तरपर आग जल रही है, और सैनिक बैठे ताप रहे हैं। कुछ दूरीपर राजकुमार पवनका कैम्प है, जिसमें पवन और प्रहसित बातें कर रहे हैं।)

पवन—दुर्मतिनगरके अधिपति वरुणने यह छेड़छाड़ आरम्भ करके अदूरदर्शिताका परिचय दिया है।

प्रह०—इसमें क्या सन्देह है। अकारण युद्ध करना, सहस्रों पुरुषोंके रक्त-पातका कारण बनना, बालकोंको अनाथ, स्त्रियोंको विधवा और निर्दोष प्राणियोंकी हत्या कर देना क्या ये ऐसी बातें हैं, जिनको प्रकृतिका नियम और न्याय चुपचाप सह सकता है?

पवन—कदापि नहीं।

प्रहसित—महाराजको जो पत्र आया है, उसमें यह भी लिखा है कि महाराज रावणने वरुणसे कहा कि मैं युद्ध करनेके विरुद्ध हूँ। इस लिए यदि आप चाहें, तो इस विषयको एक न्याय-सभाके सम्मुख रख दिया जाय। परन्तु वरुणने बलके गर्व्वमें अन्धे होकर इस उचित प्रार्थनाको भी अस्वीकार किया और उत्तर दिया कि वीरोंके झगड़े तलवारसे तय हुआ करते हैं। उसीसे महाराज रावणको विवश होकर युद्धका प्रबन्ध करना पड़ा है।

पवन—हाँ, यह सब मैं पढ़ चुका हूँ।

प्रहसित—इतना घमण्ड !

पवन—मुझे जहाँ उसके अन्याय्य आचरणपर खेद है, वहाँ इस बातकी प्रसन्नता भी है कि मुझे रण-भूमिमें जाने और अपनी वीरता दिखानेका अवसर प्राप्त हुआ है ।

प्रहसित—यह आपने क्षत्रियोंके योग्य वचन कहे हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि महाराज रावण आपसे बहुत प्रसन्न होंगे ।

(किसी पक्षीकी हृदय-वेधक आवाज सुनाई देती है ।)

पवन—यह किसका स्वर है प्रहसित ?

प्रहसित—यह दीप नदीके समीप है । इस लिए उसके दोनों तीरोंपर चकवा-चकवी बोल रहे हैं।

पवन—परन्तु स्वरसे ऐसा प्रतीत होता है, मानों वे रो-रोकर एक दूसरेको बुला रहे हैं ।

प्रहसित—यही बात तो है राजकुमार। प्रकृतिने कुछ ऐसा नियम बाँध दिया है कि चकवा-चकवी दिनभर तो एक साथ रहते हैं; परन्तु रात्रिको उनका मिलाप नहीं हो सकता। नदीके एक तीरपर चकवी और दूसरेपर चकवा होता है। इधरसे चकवी बोलती है उधरसे चकवा उत्तर देता है, और दोनों उड़कर मिलना चाहते हैं। परन्तु जब चकवा इधर आता है, तो चकवी उधर पहुँच जाती है। इसी प्रकार रोते रोते सारी रात कट जाती है ।

पवन—अद्भुत बात है ।

प्रहसित—वास्तवमें अद्भुत है । परन्तु प्रकृतिका नियम है और इसे संसार-भरकी शक्तियाँ एकत्र होकर भी तोड़ना चाहें, तो सफलता नहीं हो सकती ।

पवन—और यह रुदन केवल रात्रिके वियोगके कारण है।

प्रहसित—हाँ, केवल रात्रिके वियोगके कारण।

पवन—(स्वगत) ओ निर्दयी पवन! प्रकृति माताके इन बेसमझ पक्षियोंसे शिक्षा ले, और उस अबलाका ध्यान कर, जो तेरे वियोगमें दिनरात रो-रोकर अपना यौवन बिता रही है। ये पक्षी एक एक रात्रिके वियोगमें इतने व्याकुल हो जाते हैं तो अञ्जनाकी दशा क्या होगी जो कई वर्षोंसे विरह-अग्निमें जल रही है?

प्रहसित—यह आप क्या कह रहे हैं?

पवन—अपने आपको धिक्कार रहा हूँ। अपने आत्माको फटकार रहा हूँ।

प्रहसित—क्यों?

पवन—तुम्हें स्मरण है कि विवाहसे पहले अञ्जनाका चित्र देख मैं अधीर हो उठा था, और तुम्हें साथ लेकर महेन्द्रपुर चला गया था।

प्रह०—और वहाँ घूमते घूमते हम भूलसे देवी अञ्जनाकी वाटिकामें चले गये थे।

पवन—हाँ, और वृक्षकी ओटसे रमणियोंकी बातें सुनते रहे थे।

प्रह०—यह घटना मुझे भली भाँति याद है।

पवन—परन्तु यह तो याद न होगा कि वहाँ अञ्जनाके मुखसे अपने विषयमें अपमान-सूचक शब्द सुनकर मैंने एक भीषण प्रतिज्ञा की थी।

प्रहसित—भीषण प्रतिज्ञा!

पवन—हाँ हाँ-भीषण प्रतिज्ञा।

प्रहसित—क्या?

पवन—यह कि विवाहके पश्चात् बारह वर्ष तक उसका न मुख देखूँगा, न उससे बात करूँगा।

प्रहसित—राजकुमार, यह आपने जो कुछ किया, बुरा किया। मैंने उस समय भी पूछा था और अब भी पूछता हूँ कि आपके पास इसके लिए क्या प्रमाण है कि वे शब्द अंजनादेवीके मुखसे निकले थे?

पवन—मुझे सन्देह था।

प्रह०—सन्देह था तो विवाहके पश्चात् दूर कर लेते। परन्तु शोक है कि आपने यह भी न किया और उस अबलाको घोर विपत्तिमें डाल रक्खा। विचार तो कीजिए कि जो अबला माता-पितासे बिछुड़कर गृहका त्याग करके केवल आपके प्यारसे आदित्यपुरको अपना गृह बनाये हुए है, आपने उसकी सुधि इस प्रकार भुला दी जिस प्रकार बालक खिलौना तोड़कर उसे भूल जाता है। तो उसकी क्या गति होगी?

पवन—मित्र, मेरा आत्मा मुझको फटकार रहा है। अधिक शर्मिन्दा न करो—बताओ मैं क्या करूँ?

प्रह०—इसी स्थानसे वापस जाओ। उसके आगे गिड़गिड़ाओ और अपना वस्त्र फैलाकर उससे क्षमाकी भिक्षा माँगो।

पवन—यह असम्भव है। क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा भंग नहीं हो सकती।

प्रह०—आपका यह विचार भी निर्मूल है, क्योंकि प्रतिज्ञाके बारह वर्ष बीत चुके हैं।

पवन—बीत चुके?

प्रह०—हाँ बीत चुके। अब आप उससे भेंट कर सकते हैं।

पवन—तो तुम्हारी रायमें मुझे यहाँसे वापस चला जाना चाहिए?

प्रह०—हाँ हाँ ।

पवन—परन्तु माता-पिता क्या यह न समझ लेंगे कि मैं युद्ध-क्षेत्रसे भयभीत होकर लौट आया हूँ ?

प्रहसित—उनसे भेंट करनेकी आवश्यकता ही क्या है । सीधे अञ्जनाके महलमें जाइए, और दो तीन दिन रहकर आ जाइए ।

पवन—और तुम ?

प्रहसित—मैं सेनासमेत रामनाथमें आपकी प्रतीक्षा करूँगा ।

पवन—अच्छी बात है । तो मैं अभी जाऊँ ?

प्रह०—हाँ अभी । अश्वपाल !

[अश्वपालका प्रवेश]

प्रह०—जाओ, जाकर राजकुमारका घोड़ा तैय्यार करो । वे आदित्यपुर जायँगे ।

(अश्वपालका सर झुकाकर प्रस्थान)

प्रह०—(हँसकर) राजकुमार, एक बातका ध्यान रखना होगा ।

पवन—वह किस बातका ?

प्रह०—आते समय अपनी अँगूठी देवी अञ्जनाको देते आना ।

पवन—क्यों ?

प्रह०—वह फिर बताऊँगा ।

पवन०—मैं समझ गया कि तुम्हारा इशारा किस ओर है ।

[अश्वपालका प्रवेश]

अश्वपाल—श्रीमान्, घोड़ा तैय्यार है ।

पवन—चलो, (प्रहसितसे) अब तुम विश्राम करो ।

प्रह०—नहीं, मैं कुछ दूर तक आपके साथ चलूँगा ।

(सबका प्रस्थान)

[विद्युत्प्रभका ओटसे निकलना]

विद्युत्प्रभ—जो अँगूठी अञ्जनाको दी जावेगी, उसका उड़ाना आवश्यक है, नहीं तो बना बनाया खेल बिगड़ जानेका भय है। चल विद्युत्प्रभ, चल और ललिताको उसके कर्तव्यकी सूचना दे।

(ठहरकर और अपनी छातीपर हाथ मारकर)

निष्ठुर, अन्यायी, तू किधर जा रहा है! तू क्या कर रहा है? बलिदानके बकरे, आँखें खोल और इस पापाचरणका त्याग कर। संसार दिन-रात ऊँचा चढ़नेका प्रयत्न करता है, परन्तु तू प्रतिक्षण पापकी खोहमें उतरता जाता है। नहीं, मगर नहीं। मेरा तिरस्कार हुआ है, मेरा अपमान हुआ है। मैं प्रतीकारके अवसरको नहीं छोड़ सकता।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—आदित्यपुरमें अञ्जनाका महल

समय—सन्ध्यासे कुछ पहले

[अञ्जना स्थिर भावसे आकाशकी ओर देख रही है।
वसन्तमाला परे बैठी है। ललिता प्रवेश करती है।]

ललिता—राजकुमारी, क्या विचार कर रही हो? आकाशकी ओर क्या निहार रही हो?

अञ्जना—देख रही हूँ कि विधाताने मेरे प्रारब्धके आकाशपर अपने निर्दय हाथोंसे कितने दुःख लिखे हैं। उनमेंसे कितने भोग चुकी हूँ और कितने भोगने अभी बाकी हैं। ललिता, क्या ये दुःखकी घड़ियाँ कभी समाप्त न होंगीं!

ललिता—दुःखकी घड़ियाँ?

अञ्जना—हाँ, दुःखकी घड़ियाँ।

ललिता—आपको क्या दुःख है ?

अञ्जना—यह क्यों नहीं पूछतीं कि मुझे क्या सुख है ?

ललिता—क्या आपके पास उत्तम उत्तम आभूषण नहीं ?

अञ्जना—हैं।

ललिता—अनमोल वस्त्र ?

अञ्जना—हैं।

ललिता—सुन्दर भवन ?

अञ्जना—है।

ललिता—सेवा करनेको दास-दासियाँ !

अञ्जना—हैं।

ललिता—धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य्य, नीरोगता और यौवनके होते हुए भी इस दुःखका क्या कारण हो सकता है !

अञ्जना—ललिता, सचमुच यौवन अवस्थामें, स्वादिष्ट भोजन कर, उत्तम उत्तम वस्त्र पहनकर, सिरसे पैरों तक जवाहरात और हीरोंसे सुसज्जित होकर, चाँदीके महलमें सोनेके पलंगपर बैठकर भी वह स्त्री प्रसन्न नहीं हो सकती, जिसके हृदयमें पति-वियोगका अँधेरा छाया हुआ है। जिस पुरुषको नेत्र छीनकर मनोहर दृश्यके मध्यमें बैठा दिया जाय, उसको उससे क्या लाभ हो सकता है ? जिस पुरुषको सुननेकी शक्ति न रहते हुए तान-भरे गीतोंका सितार सौंप दिया जाय, उससे उसको क्या लाभ हो सकता है ? धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य श्मशानके दीपक हैं, यदि स्त्रीपर उसके पतिकी प्रेम-दृष्टि न हो तो।

ललिता—हा दैव ! क्या राजकुमार पवनने अभीतक अपना हृदय तुमसे साफ नहीं किया ?

अञ्जना—हाँ बहन, मेरे दुर्भाग्यकी मेघाच्छादित रात्रिमें अभी तक चंद्र उदय नहीं हुआ।

ललिता—ओ निष्ठुर, अन्यायी पवन ! तू इस कोमल फूलको मिट्टीमें क्यों मिला रहा है !

अञ्जना—परिचित होनेके कारण मैंने ये बातें तुमसे कह दी हैं; परन्तु, तुमको कोई अधिकार नहीं कि मेरे पतिपर आक्षेप करो।

ललिता—कैसी प्रेमकी पुतली स्त्री, और कैसा अन्यायी पति !

अञ्जना—मैं कह चुकी हूँ कि मैं उनकी स्त्री हूँ, और कोई भारतीय स्त्री यह नहीं सह सकती कि उसकी उपस्थितिमें उसके पतिके प्रति तिरस्कार-सूचक शब्द बोले जायँ।

ललिता—रानी—

अञ्जना—सावधान ! मैं इससे अधिक कुछ नहीं सुन सकती।

ललिता—मेरा प्रयोजन—

अञ्जना—बस चली जाओ, मैं एक शब्द भी नहीं सुनूँगी। वसन्तमाला, इसे समझा दो कि दोबारा अपने श्वाससे इस महलका वायु अपवित्र न करे।

ललिता—मैं यह कहे बिना नहीं रह सकती कि आपका व्यवहार दास-दासियोंके लिए सर्वथा असह्य हो रहा है। (प्रस्थान)

अञ्जना—प्राणनाथ ! यदि तुम आ जाओ, तो मैं अपने जीवनके एक एक क्षणको एक एक वर्ष—एक एक शताब्दि—बना दूँ। परन्तु जब तुम लौटने लगो तो इस समाप्त न होनेवाले समयको अश्रुके एक बिन्दुमें बंद करके आपके चरणोंपर निछावर कर दूँ। इतना समय बीत गया, इतने दिन गुजर गये, संसारमें अनेकानेक परिवर्तन हो

गये परन्तु मेरे दुर्भाग्य-चक्रमें कोई फेर नहीं हुआ। क्या मेरा जीवन एक लम्बी रात्रिकी नाईं रहेगा और उसके आकाशपर कोई प्रकाशपूर्ण नक्षत्र उदय नहीं होगा ?

वसन्तमाला—दुनियाँ हँसती है, क्या इसीके होठ रोनेके लिए बनाये गये हैं ? लोग आनन्द मनाते हैं, क्या इसीके नेत्र अश्रु-धारा बहानेको उत्पन्न हुए हैं ? परन्तु नहीं, यह जो कुछ हो रहा है, उसी दयामय हरिकी आज्ञासे, उसी जगत्पति परमेश्वरकी इच्छासे, जिसके संकेत मात्रपर आधा संसार रोता और आधा हँसता है। आधा मास चंद्रमा चमकता है, और आधा मास अन्धकारका राज्य रहता है।

(अञ्जना निद्रामें बड़बड़ाती है।)

अञ्जना—कृपा ! प्राणनाथ कृपा ! आज प्रारब्ध बड़ी अच्छी है, जो आपके दर्शन हुए।

वसन्तमाला—दुखियारी स्वप्नमें न जाने क्या बड़बड़ा रही है। भगवान् इसके हृदयकी प्रार्थनाओंको सुन और इसके दुःखोंको समाप्त कर।

अञ्जना—(पुनः स्वप्नमें) यह फूलोंकी माला—

वसन्तमाला—(अञ्जनाके निकट जाकर) राजकुमारी !

(अञ्जना उठकर वसन्तमालाके पैरोंपर गिर पड़ती है।)

अञ्जना—पापिनी, डायन, यह तूने क्या किया ! बोल जवाब दे, नहीं तो तेरा गला घोंट दूँगी।

वसन्तमाला—कौन ? क्या ? राजकुमारी होशमें आओ। मैं वसन्तमाला हूँ।

अञ्जना—(आँख खोलकर) वसन्तमाला ?

वसन्तमाला-हाँ, मैं तुम्हारी वसन्तमाला हूँ। क्या तुमने स्वप्न देखा है ?

अञ्जना—हाँ, स्वप्न देखा है। बड़ा मनोहर, बड़ा सुखदायक, परन्तु, अन्तमें बड़ा खेदजनक।

वसन्तमाला—क्या ?

अञ्जना—मैंने देखा कि मैं एक वाटिकाके अन्दर पुष्प-लताओंकी छायामें प्राणनाथको ढूँढ़ रही हूँ और बार बार उनका नाम लेकर उनको पुकार रही हूँ। मेरे नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही है और शब्द मेरे होठोंपर जम जाते हैं। चारों ओर अंधकार है, और मैं पग पगपर गिर रही हूँ। एकाएक बादल फट गये, और आकाशमें बिजलीका चमत्कार हुआ।

वसन्तमाला—फिर ?

अञ्जना—आँख उठाई तो देखा, प्राणनाथ मेरे निकट खड़े थे। मैं दौड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़ी और उन्होंने मुझे उठाकर गले लगा लिया। इसके अनन्तर हम घासपर बैठकर प्रेमसे बातें करने लगे कि इतनेमें एक राक्षसीने आकर कुछ पढ़ा, तो प्राणनाथ वृक्ष बन गये और मुझे किसीने उठाकर नदीमें धकेल दिया।

वसन्तमाला—रक्षा करो, परमात्मन् रक्षा करो।

अञ्जना—परन्तु आश्चर्यकी बात तो अभी तुमने सुनी ही नहीं।

वसन्तमाला—वह क्या है ?

अञ्जना—उस राक्षसीको मैंने पहचान लिया। क्योंकि मैं उसे भली भाँति जानती हूँ।

वसन्तमाला—कौन थी ?

अञ्जना—ललिता।

वसन्तमाला—निद्रा मैय्याकी गोदमें जानेसे पहले, जिस वस्तुके विचार मनमें धारण किये जायँ, वही वस्तु नाना प्रकारके रूप धारण

करके स्वप्नमें दिखाई देती है। यही कारण है कि ललिताके विचारने शरीर धारण करके तुम्हारे स्वप्नको भयानक बना दिया है। इसमें कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं।

(द्वारपर खटका होता है।)

अञ्जना—जाओ देखो, द्वारपर कौन है ?

(वसन्तमालाका प्रस्थान)

अञ्जना—क्या मेरे नेत्र इतने भाग्यवान् हैं कि मेरा स्वप्न ठीक उतरे, और उनको प्राणनाथके दर्शन प्राप्त हों ? यह नहीं हो सकता। क्योंकि सुना है, वे तो लंकाको चले गये हैं।

[वसन्तमालाका प्रसन्नतासे प्रवेश]

अञ्जना—कौन है ?

वसन्तमाला—राजकुमारी, प्रसन्न होओ, आनन्द करो, आज तुम्हारे दु:खका अन्त हो गया। आज मेरे शरीरका एक एक परमाणु नाच रहा है। हृदयमें आनन्दकी तरंगें उठ रही हैं।

अञ्जना—क्या बात है जो इतनी प्रसन्न हो रही हो।

वसन्तमाला—उठो, सर्वदयालु प्रभुको धन्यवाद दो और द्वारपर जाकर राजकुमारका स्वागत करो।

अञ्जना—राजकुमार ? प्राणनाथ आ गये ? कहाँ हैं ? बोलो—कहो—बताओ। मेरे कान यह शुभ समाचार सुननेके भूखे थे। मेरे नेत्र उनके दर्शनके लिए व्याकुल थे—

वसन्तमाला—द्वारपर खड़े हैं। जाकर सम्मानसे अन्दर ले आओ।

अञ्जना—मेरे प्रारब्धका सितारा ! जीवनकी आशा—

(जाना चाहती है । एकाएक पवन अन्दर आ जाते हैं, अञ्जना उनके चरणोंमें गिर पड़ती है और पवन उठाकर उसके मुखकी ओर देखने लगते हैं ।)

वसन्तमाला—आज मेरी मनोकामना सिद्ध हुई। परमात्माकी यह अपार दया है। (प्रस्थान)

पवन—प्रिये !

अञ्जना—नाथ !

(अञ्जना दीवारोंकी ओर देखती है ।)

पवन—दीवारोंकी ओर क्या देखती हो ?

अञ्जना—मैं देख रही हूँ कि यही दीवारें जो आपके विना भूत बन-बनकर मुझे काटने दौड़ती थीं, आज आपके आगमनके साथ ही कैसी सुन्दर और मनोहर दीखती हैं। संसारमें आज नया प्रकाश दृष्टि-गोचर होता है। निराशाके स्थानमें आशाका आसन है।

पवन—मैं भी तुम्हारे देखनेके लिए अधीर था, व्याकुल था, परन्तु विवश था, प्रतिज्ञा मार्गमें खड़ी हो जाती थी। शुक्र है कि बारह वर्ष समाप्त हो गये।

अञ्जना—परन्तु प्रतिज्ञाका कारण ?

पवन—तुम्हारा एक दोष।

अञ्जना—मेरा दोष ?

पवन—हाँ हाँ, तुम्हारा दोष। तुम्हें स्मरण है कि विवाहसे कुछ पहले तुम सखियोंसहित अपनी वाटिकामें घूम रहीं थीं और विवाह-प्रसंग छिड़नेपर तुमने मुझे विष-समुद्र और विद्युत्प्रभको अमृतके घूँटकी उपमा दी थी। उस समय मैंने एक वृक्षकी ओटसे सब कुछ सुना, और विवाहके पश्चात् तुमको बारह वर्षके लिए त्याग दिया।

अञ्जना—परन्तु, यह मैंने तो नहीं कहा था।

पवन—तुमने नहीं कहा था ?

अञ्जना—नहीं।

पवन—तो ?

अञ्जना—हमारे यहाँ एक प्रेमदत्त भट्ट है, उसकी कन्या शान्ता बड़ी नटखट है। ये शब्द उसने कहे थे।

पवन—इसपर तुमने उसे कुछ कहा होगा ?

अञ्जना—उस समय नहीं। क्योंकि मैं उस समय बारहदरीमें जा चुकी थी। इसकी सूचना मुझे पीछे मिली, जिसपर मैंने उसे यथा-योग्य विधिसे समझा दिया। परन्तु अगर मैं जानती कि आप वहाँ खड़े हुए शब्द सुन गये हैं तो—

पवन—क्षमा करो। शान्ति और धैर्य्यकी देवी! क्षमा करो! मैंने क्रोधमें आकर वह पाप किया है, जिसका प्रायश्चित्त नहीं।

अञ्जना—नाथ, यह आप क्या कह रहे हैं! मैं आपकी दासी हूँ। ये शब्द कहते हुए आप शोभा नहीं पाते।

पवन—(स्वगत) कैसा कोमल स्वर है, कैसे मधुर शब्द हैं जिनमें तनिक क्रोध नहीं, घृणा नहीं, असन्तोष नहीं। (प्रकाश्य) क्षमा करो देवी, मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें बड़ा दुःख दिया है। तुमपर अन्याय किया है।

अञ्जना—नाथ, बारह वर्षका सुदीर्घ समय अब भूल गया है और स्मरण तक नहीं रहा कि आपके वियोगमें हृदयकी व्यथा किस प्रकारकी थी। आपके दर्शन करके, आपके वचन सुनकर, संसार एक अनवरत गीत मालूम होता है, जिसका एक एक पद आत्मामें उतर जाता है। मालूम होता है कि संसार केवल एक स्वर है, जो चहुँ

ओर गूँज रहा है। केवल एक प्रकाश है, जो प्रत्येक स्थानपर व्याप्त है। केवल एक सुगन्धि है, जिसका कोई अन्त नहीं।

[वसन्तमालाका प्रवेश]

वसन्तमाला—आज चन्द्र-सूर्य्यकी जोड़ी देखकर हृदय शान्त हुआ है। उठिए, चलकर सन्ध्या आदिसे निवृत्त हूजिए।

पवन—क्या आसन बिछवा दिये हैं?

वसन्तमाला—जी हाँ, और जलके पात्र भी रखवा दिये हैं।

(सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—सम्राज्ञी केतुमतीके भवनका बाहरी भाग

समय—रात्रि

[ललिता और चम्पा]

ललिता—यह तुमसे किसने कहा?

चम्पा—स्वयं वसन्तमालाने।

ललिता—तो फिर यह सूचना असत्य नहीं, सत्य है।

चम्पा—हाँ, सत्य है।

ललिता—अञ्जना गर्भवती है।

चम्पा—हाँ, और हर समय पवनकी दी हुइ अँगूठी अपने पास रखती है।

ललिता—तो हमें एक काम और करना होगा।

चम्पा—वह क्या?

ललिता—(एक अँगूठी देकर) यह अँगूठी पवनकी दी हुई अँगूठीके सदृश है। अञ्जनाकी अँगुलीसे वह अँगूठी निकालकर यह नकली अँगूठी उसकी अँगुलीमें पहरा देना ही तुम्हारा काम होगा।

चम्पा—परन्तु, मैं यह नहीं कर सकती। दूसरोंकी बुराई करके धनवान् बननेकी अपेक्षा भिक्षा करके पेट भर लेना या, वह भी न मिले तो, भूखसे मर जाना अधिक प्रशंसनीय है। मेरा काम पापकी कमाईके बिना भी भली भाँति चल सकेगा। मैं इस पापमें तुम्हारे साथ सम्मिलित नहीं हूँगी।

ललिता—तो तुम्हें यह अस्वीकार है?

चम्पा—हाँ, अस्वीकार है।

ललिता—समझकर बोलो, धन मिलेगा।

चम्पा—उसे मैं नहीं चाहती।

ललिता—सुख प्राप्त होगा।

चम्पा—मेरा अन्तःकरण नहीं मानता।

ललिता—हाथ आये हुए उन्नतिके अवसरको ठोकर मारना मूर्खता है।

चम्पा—मैं इसी अवस्थामें सन्तुष्ट हूँ।

ललिता—तो मालूम हो गया कि तुम उन लोगोंमेंसे हो जो उन्नतिको लोभ, आलस्यको शान्ति और निर्बलताको अन्तःकरण कह कर पुकारते हैं, और संसारकी सबसे निकृष्ट वस्तु निर्धनताको प्रिय-पुत्रके समान प्यार करके पालते हैं।

चम्पा—जो भी हो, मनुष्यको मनुष्यकी बुराई नहीं करनी चाहिए, आत्म-हननसे बचना चाहिए।

ललिता—बेसमझ स्त्री! क्या दुनियामें पग-पगपर हननका नियम दिखाई नहीं दे रहा है? यदि आँख उन अगणित परमाणुओंको देख सकती, जो वायुमें उड़ रहे हैं, तो तुम्हें आश्चर्य होता कि किस तरह प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणुको खानेके लिए व्याकुल हो रहा है। यह अदृश्य सृष्टिका हाल है। इस लोकमें कीड़ोंको मीन खाती है, मीनको

मेंढक खाता है, मेंढकको सर्प खाता है, सर्पको गरुड़ खाता है और गरुड़को, मृत्युके पश्चात्, फिर वही छोटे छोटे कीड़े अपना आहार बनाते हैं। क्या संसारमें प्रत्येक मनुष्य दूसरोंको जीत लेने, खा जाने और सर्वनाश कर देनेका यत्न नहीं कर रहा है? क्या प्रत्येक स्थान-पर पराक्रमका सम्मान नहीं होता है? निर्धन रहो, दासीका काम करो, तो तुम्हें पता लग जायगा कि संसारमें नेकीका कितना आदर होता है, और धनका क्या दर्जा है।

चम्पा—तुम्हारे शब्दोंने मुझमें पुनः साहसका संचार कर दिया है। अब मैं फिर तुम्हारा इष्ट कर्म, चाहे वह कितना ही दुष्ट क्यों न हो, प्रसन्नता और साहससे करूँगी; परन्तु मेरा पुरस्कार—

ललिता—उससे कई गुना अधिक दूँगी।

चम्पा—बड़ी दया राजकुमारी।

ललिता—सावधान! इस शब्दका दूसरी बार प्रयोग न हो। नहीं तो मेरा बना बनाया खेल बिगड़ जायगा।

चम्पा—अब यह भूल न होगी।

ललिता—तो तुम मुझे कब मिलोगी, अँगूठी कब दोगी?

चम्पा—कल इसी समय।

ललिता—किस स्थानपर?

चम्पा—इसी स्थानपर।

ललिता—सावधानीसे काम करना।

चम्पा—आप निश्चिन्त रहें।

ललिता—अच्छा जाओ, तुम्हारे मार्ग शुभ हों।

(चम्पाका प्रस्थान)

ललिता—हृदय, प्रसन्न हो कि तेरे शिकारके तेरे फंदेमें फँसनेका

समय अब निकट है। दिन रातका परिश्रम, वर्षकी सेवा, पापाचरणकी कुटिल नीति फलीभूत होनेको है और अञ्जनाके सर्वनाशकी घड़ियाँ, प्रत्येक क्षणमें, जो बीतता है उसके समीप सरक रही हैं। ओह! वह समय कब आयगा जब मेरा क्रोध शान्त होगा, और रात्रिको मैं आरामकी निद्राका सुख प्राप्त कर सकूँगी। (प्रस्थान)

दृश्य परिवर्तन

स्थान—अञ्जनाका महल

समय—रात्रि

[अञ्जना एक हाथ सिरके नीचे रक्खे सो रही है। पास ही वसन्तमाला पड़ी है। चम्पा धीरे धीरे आती है।]

चम्पा—यह भी सो रही है, और अन्ध-दासियाँ भी सो रही हैं। यही समय है, जब अपनी प्रारब्ध जगानेकी सामग्री एकत्र की जा सकती है, और इसके सर्वनाशपर मुहर लगानेकी तयारियाँ हो सकती हैं। यह क्या मेरा दिल बोल रहा है? परन्तु, नहीं नहीं, मैं आत्माकी चेतावनी नहीं सुन सकती, धर्म्माधर्म्मके विचारोंका ध्यान नहीं कर सकती, परलोककी दुर्गतिका भय नहीं कर सकती। मुझे इस लोकका ध्यान है। रुपयोंकी जरूरत है। एककी हानिसे दूसरेका लाभ होता है। ललिताने सत्य कहा था कि वायुका प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणुको अपना भोजन बनानेके लिए मुँह खोलकर उसपर लपक रहा है। फिर मैं ऊँचे उठनेका अवसर क्यों छोड़ दूँ? और यह पाप ही क्या है? एक अँगूठी उतारती हूँ, दूसरी पहनाती हूँ। (धीरे धीरे अँगूठी बदल लेती है।) बस, मेरा काम समाप्त हुआ। अब चलना चाहिए, कहीं किसीकी आँख न खुल जाय। (प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान— आदित्यपुरका अन्तःपुर

समय—दोपहरसे पहले

[केतुमती क्रोधमें । गानेवालियाँ चुपचाप खड़ी हैं ।]

केतुमती—क्यों, गाती क्यों नहीं ?

(गानेवालियाँ गाती हैं—)

तजहु शोक दुख-क्रोध-क्षोभ सब, मानहु हे महरानी ।
हम सब विनती कर हारीं ॥
पंछी सब शांत भये, कलित कुंजमाहिं गये ।
नभमें रथ रोकि तनिक, सूरज हूँ शांत भये ॥
प्रकृति सखी शांत भई, नीरज छबि छाय रही ।
उपवनकी कलियनसों, लिपट तपन भागि गई ॥
पवन चलत शांत चाल, शीत मंद मधुर गंध ।
डार डार पात पात, शान्ति शान्ति ही लखात ॥
आप काहे हो अशान्त ॥
हाथ जोर पाय परें, विनय करें बार बार ॥
रोष तजो, साज सजो, चन्द्र * हँसे, कमल+ खिलें ।
बलिहारी ॥ तजहु शोक० ॥

केतुमती—रहने दो रहने दो । मैं नहीं सुनना चाहती ।

(गानेवालियोंका प्रस्थान)

संगीत कैसी उत्तम वस्तु है । पर, जब तक अन्दरके तार ठीक अवस्थामें न हों, बाहरके तार हिलाने और मिलानेसे कानोंको न रस मिलता है, न चित्तको शान्ति प्राप्त होती है । जबसे अञ्जनाके चरि-

---

* मुखड़ा । +नयन ।

त्रकी बातें सुनी हैं, तन-मनमें अग्नि भड़क रही है, और ऐसा मालूम होता है, मानो संसारमें कोई पुरुष तथा कोई स्त्री इस योग्य नहीं रही कि उसपर विश्वास किया जाय।

[ललिताका प्रवेश]

केतु०—कौन, ललिता आ गई ?

ललिता—हाँ महारानीकी जय हो, मैं आ गई।

केतुमती—तूने मुझे क्या कहा था ? तूने मुझे क्या बताया था ? तूने मेरे आगे कैसा भयानक चित्र रक्खा था, जिसके कारण मैं सारी रात घबराती रही हूँ, और आत्माको चीर देनेवाले स्वप्न देखती रही हूँ। (गला पकड़कर) बोल बोल निर्लज्जा कुटिला, बोल। इस बातका तेरे पास क्या प्रमाण है कि तूने जो कुछ कहा था, वह सत्य है।

ललिता—सम्राज्ञि, मैं प्रमाण देनेको उद्यत हूँ।

केतुमती—प्रमाण ! कब ?

ललिता—अभी।

केतुमती—सत्य ?

ललिता—आँखोंसे दिखाऊँगी।

केतुमती—अञ्जनाका दोष ?

ललिता—सम्मुख करूँगी।

केतुमती—याद रक्खो, तुम राजपुत्र-वधूपर दोषारोपण कर रही हो।

[चम्पाका प्रवेश]

ललिता—सम्राज्ञि, लीजिए चम्पा वापस आ गई।

केतुमती—चम्पा, तू अपनी स्वामिनीके महलमें गई थी ?

चम्पा—हाँ, महारानीकी जय हो, मैं वहींसे आ रही हूँ।

केतुमती—वह वहाँ थी।

चम्पा—जी हाँ, वे वहीं थीं।

केतुमती—क्या कर रही थी?

चम्पा—कुछ उदास-सी थीं। वसन्तमालाके साथ धीरे धीरे बातें कर रही थीं। असबाब बाँधनेके चिह्न थे।

केतुमती—(जोरसे हाथ पकड़कर) ठहर। (एक कोनेमें ले जाकर) तू कुछ और भी जानती है?

चम्पा—हाँ सम्राज्ञि, मैं वह जानती हूँ जो मेरी जिह्वा कहना नहीं चाहती।

केतुमती—तूने क्या देखा?

चम्पा—मुझपर कृपा कीजिए, मुझसे न पूछिए। आप मुझपर अविश्वास करेंगीं। मुझपर क्रोध करेंगीं।

केतुमती—तुझे बोलना होगा। उत्तर देना होगा।

चम्पा—क्या ही अच्छा होता जो मेरे पैर कट जाते, और मैं यहाँ आनेके योग्य न रहती। या मेरी जिह्वा न होती, और मैं उत्तर न दे सकती।

केतुमती—इस कविताको समाप्त कर, और जितने शब्द भूमिकामें बोल चुकी है उससे आधे शब्दोंमें कामकी बात कह डाल।

चम्पा—आज मुझे यह स्पष्टतया जान पड़ा है कि अञ्जना गर्भवती हैं।

केतुमती—यह सन्देह तुझे कभी पहले भी हुआ था?

चम्पा—कई बार, परन्तु हर बार मैंने यही समझा कि मेरी आँखें भूल करती हैं।

केतुमती—तूने मेरा सन्देशा उसे दिया? यहाँ आनेको कहा?

चम्पा—हाँ महारानी, सुखपाल तैय्यार हो रहा है, वे आ रही हैं।

केतुमती—उठा लो विश्व-पिता! अब तो मुझे उठा लो, यह देखा नहीं जाता। मेरे मुँहकी झुर्रियाँ, बालोंकी सफेदी और दुर्बल दृष्टिमें क्या यही देखना बदा है कि पुत्र-वधू क्या दुराचार करती है, और राजमहलको कैसा काला कलंक लगता है।

दासी—महारानीकी जय हो, अञ्जना द्वारपर खड़ी आज्ञा माँगती हैं।

केतुमती—आने दो।

[दासीका प्रस्थान, अञ्जनाका प्रवेश]

अञ्जना—(सिर झुकाकर प्रणाम करती है, और सम्राज्ञीके चरणोंमें फूल रखती है।)

केतुमती—अञ्जना यह क्या है?

अञ्जना—फूल, माताजी।

केतुमती—फूल?

अञ्जना—हाँ फूल। प्रकृति माताके मनोहर बच्चे। संसार-हाटकी सबसे अधिक निर्मल और स्वच्छ वस्तु।

केतुमती—परन्तु यह फूल, जिसको तेरे अपवित्र हाथ लग गये हैं, अब इस योग्य नहीं कि कोई स्त्री इन्हें ग्रहण कर सके।

(फूलोंको घृणासे भूमिपर फेंक देती है।)

अञ्जना—माताजी, इन सुन्दर पुष्पोंके प्रति इस कटु व्यवहारका क्या कारण है? इसमें कोई मेरा दोष है, या इन परोपकारी व्यक्तियोंका?

केतुमती—निर्लज्जा पापिनी, दुराचारिणी, इन फूलोंका क्या दोष हो सकता है? इस देवताओंकी सम्मानित सामग्रीका क्या दोष हो सकता है? यह सब तेरा दोष है।

अञ्जना—मेरा दोष!

केतुमती—हाँ हाँ, तेरा दोष।

अञ्जना—नहीं नहीं, मैंने कोई दोष नहीं किया। आप मुझे क्रोधसे

क्यों देख रही हैं ? मुझपर आँखें लाल क्यों कर रही हैं ? मेरा एक एक अंग भयसे कंपायमान् हो रहा है।

केतुमती—और तू वास्तवमें इसी योग्य है कि तुझको लाल आँखें दिखाई जायँ, घृणासे देखा जाय।

अञ्जना—परन्तु मुझे इसका कारण तो बताया जाय।

केतुमती—तेरा बढ़ा हुआ पेट, तेरा पीला रंग, तेरे शरीरकी अवस्था यह सब बोल रहे हैं कि तू गर्भवती है। क्या इस बातसे भी तेरा सिर भूमिमें नहीं गड़ जाता ? और मेरे हृदयमें क्रोधाग्नि नहीं उठती ? बोल, तेरे पास इसका क्या उत्तर है ?

अञ्जना—मेरा उत्तर सिवाय इसके और कोई नहीं कि वे लंका जानेसे पहले यहाँ आये थे और मेरे पास तीन दिन ठहरे थे।

केतुमती—इसका प्रमाण ?

अञ्जना—वसन्तमालासे पूछ लिया जाय।

केतुमती—उसपर मुझे विश्वास नहीं।

अञ्जना—चम्पा भी जानती है।

चम्पा—मैंने पवनको नहीं देखा।

अञ्जना—(अँगूठी दिखाकर) यह उनके अपने हाथकी दी हुई अँगूठी है।

केतुमती—अँगूठी ! किसकी ? पवनकी ?

अञ्जना—हाँ माताजी ? यह उन्होंने मुझे अपने हाथसे दी थी और कहा था कि यदि मैं माता-पितासे मिला, तो वे यह समझेंगे कि मैं युद्धसे डरकर रण-भूमिसे लौट आया हूँ। इसलिए अगर आवश्यकता हुई, तो, यह दिखा देना।

केतुमती—ललिता !

ललिता—मेरा खयाल है कि अँगूठी नकली है। इसकी परीक्षा की जाय।

केतुमती—हाँ, पवनकी प्रत्येक अँगूठीके नगमें एक काग़ज़के पत्रे-पर उसके हस्ताक्षर हैं। दासी हथौड़ा ले आ। अभी निर्णय हो जाता है कि इस कथनमें सत्य कितना है।

(दासी अँगूठीका नग तोड़ती है। उसमेंसे कोरा काग़ज़ निकलता है।)

केतुमती—अञ्जना तेरी यह चाल भी खाली गई। अँगूठी नकली है।

अञ्जना—नकली ?

केतुमती—हाँ हाँ नक़ली।

अञ्जना—नहीं—नहीं, यह नहीं हो सकता—यह असम्भव है। यह अँगूठी उन्होंने मुझे अपनी अँगुलीसे उतारकर दी थी। यह उनकी ही है।

केतुमती—दुराचारिणी !

अञ्जना—इसमें कोई धोखा हुआ है। कोई भूल हुई है। मैं शपथ खाती हूँ कि मेरी चादर निर्मल है।

केतुमती—शपथ किसकी ?

अञ्जना—धरतीकी।

केतुमती—वह तेरे पापोंसे नीचे झुकी जाता ह।

अञ्जना—आकाशकी।

केतुमती— वह तुझसे दूर भागता है।

अञ्जना—धर्म्मकी।

केतुमती—तू उसे नष्ट कर बैठी है।

अञ्जना—मर्य्यादाकी।

केतुमती—वह भ्रष्ट हो चुकी है।

अञ्जना—परमात्माकी ।

केतुमती—तूने उसका भरोसा नहीं किया।

अञ्जना—सर्वान्तयामी सर्वव्यापक, तू सब कुछ जानता है। मैंने अपने जीवनका एक एक क्षण पति-स्मरणको समर्पण कर रक्खा है, और पतिव्रत धर्म्मका जो मार्ग ऋषि-मुनियोंने दर्शाया है, उससे एक पग-भर भी इधर-उधर नहीं हुई। बारह वर्ष तक दिन और रात, शरद् ऋतु और ग्रीष्म ऋतु, उनके नामकी माला जपते हुए बिता दिये हैं। परन्तु क्या अभी तक मेरे काले दिन समाप्त नहीं हुए कि यह और आपत्ति सन्मुख उपस्थित है! (रोती है।)

केतुमती—अञ्जना, रोकर किसे डराती है? ये दुराचारकी अंधी आँखोंसे निकले हुए अपवित्र आँसू किसे दिखाती है? केतुमती कच्ची और अजान बच्ची नहीं कि तेरे रोनेपर पिघल जाय, और न्याय-मार्गको त्याग दे।

अञ्जना—परन्तु मैं सत्य कहती हूँ कि मेरा कोई दोष नहीं।

केतुमती—जिस प्रकार तूने यह कुकर्म किया है, उसी प्रकारका तुझे दण्ड दिया जायगा और पातकी रथमें बिठाकर देशसे निकाल दिया जायगा।

अञ्जना—पातकी रथमें बिठाकर?

केतुमती—हाँ हाँ, पातकी रथमें बिठाकर, काले वस्त्र पहिनाकर।

अञ्जना—दीनदयाल, क्या तुम्हें भी मेरी दीन अवस्थापर दया नहीं आती!

केतुमती—तेरी जिह्वासे निकले हुए शब्दोंको वायु परमात्मा तक नहीं पहुँचा सकता, क्योंकि वे तेरे हृदयकी कालिखसे काले हो रहे हैं।

अञ्जना—माताजी, विश्वास करो, यह अँगूठी स्वयं उनकी ही है।

केतुमती—मैं अब तेरा वास्तविक रूप देखकर धोखा नहीं खा सकती।

अञ्जना—अच्छा, इतनी कृपा करें, कि जो चाहें दण्ड दें, परन्तु उनके लौटने तक अपने चरणोंमें स्थान दिये रक्खें। उनके आने पर आपको मेरे कथनकी सत्यताका ज्ञान हो जायगा।

केतुमती—बाल-बच्चोंसे भरे-पूरे गृहमें कोई काल सर्पको छोड़ सकता है? गोशालामें कोई हिंस्र सिंहको छोड़ सकता है?

अञ्जना—नहीं।

केतुमती—तो मैं तुमको, जो सर्पिणीसे अधिक विष-भरी हो, सिंहसे अधिक हत्यारी हो, अपने गृहमें निवास करनेकी आज्ञा कैसे दे सकती हूँ? दासी, जाओ, जाकर रथवानसे कहो कि काला रथ तैयार करे और तुम काले वस्त्र लेकर आओ, ताकि इस बाहरके रोगको बाहर ही टाला जाय।

ललिता—महारानी, इसपर कृपा करो, यह आपकी बहू है।

केतुमती—परन्तु हानिकारक होनेसे शरीरका अंग भी काटकर फेंक दिया जाता है। दासी, जाओ।

[एकाएक वसन्तमालाका प्रवेश।]

केतुमती—तुम कौन?

वसन्तमाला—आपकी दासी वसन्तमाला!

केतुमती—तू यहाँ किस तरह आई? तुझे अन्दर आनेकी आज्ञा किसने दी?

वसन्तमाला—सत्यने उभारा। मनुष्यत्वने पुकारा। दयाके देवताओंने द्वारपालोंको टाल दिया। परमात्माकी शुभ इच्छाने मुझे अन्दर धकेल दिया।

केतुमती—परन्तु तेरे आगमनका प्रयोजन ?

वसन्तमाला—मैं आपके कानोंसे कुछ कहना चाहती हूँ।

केतुमती—वे इस समय बहरे हो रहे हैं।

वसन्तमाला—मैं आँखोंसे कहूँगी।

केतुमती—उनपर इस दुराचारिणीके दुराचारके पर्दे पड़े हुए हैं।

वसन्तमाला—हृदयसे सही।

केतुमती—वह पत्थर हो रहा है।

वसन्तमाला—मैं न्यायकी देवीके आगे रोऊँगी, चिल्लाऊँगी, गिड़गिड़ाऊँगी। वह सोती होगी, मैं जगाऊँगी। वह लेटी होगी, मैं उठाऊँगी। वह शान्त होगी, मैं उसे क्रोध दिलाऊँगी और जो अन्याय उसके भवनमें होने लगा है, वह न होने दूँगी।

केतुमती—अन्याय ?

वसन्तमाला—हाँ, हाँ, एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरे तक अन्याय।

केतुमती—जानती हो क्या कह रही हो ?

वसन्तमाला—जो कुछ कह रही हूँ सत्य कह रही हूँ।

केतुमती—जानती हो, इसका परिणाम क्या हो सकता है ?

वसन्तमाला—सत्यके लिए मैं सब कुछ सह सकूँगी।

केतुमती—परन्तु मुझे तेरे कथनपर विश्वास नहीं, कारण यह कि तू इसकी पैतृक दासी है, और दासी अपनी स्वामिनीका पक्ष न ले, यह असम्भव है।

वसन्तमाला—इतना तो विचारिए कि जो सती बारह वर्ष तक तपस्या कर सकती है, क्या उसमें पापकी सम्भावना रह सकती है ?

केतुमती—बारह साल तक धोया हुआ वस्त्र एक क्षणमें काला हो सकता है।

वसन्तमाला—जब इसको प्रत्येक प्रकारका सुख प्राप्त है, तो इसको दुराचारकी आवश्यकता क्यों पड़ी ?

केतुमती—इसके उत्तरमें वह दीवारपर किसी कविका वचन लिखा हुआ है—

यौवनके दोपहरमें, सुख होवे हर भाँत ।
तो भी कामानल प्रबल, होवत नाहीं शान्त ।

वसन्तमाला—और इसका उत्तर दूसरी दीवारपर अंकित है—

सिंहनी मर जाती है, पर घासको खाती नहीं ।
आगमें सोना जले, फिर भी चमक जाती नहीं ॥
लाख प्यासा हो पपीहा, वर्षा-जलकी बूँदका ।
फिर भी, उसको गंगा-जलकी धार भरमाती नहीं ॥

केतुमती—बस, तुझे जो कुछ कहना था कह चुकी । अब जो कुछ मेरा विचार हैं मैं करूँगी ।

अञ्जना—माताजी, मैं निर्दोष हूँ ।

केतुमती—मैं तुझको सताये हुए जीसे और तपे हुए हृदयसे शाप देती हूँ कि तेरे पुत्री उत्पन्न हो । वह युवती हो, सुन्दरी हो, तेरे समान दुराचारिणी बने और तब तू भी मेरे समान रो-रोकर कलेजा मले।

वसन्तमाला—जो कुछ कहना है समझ-सोचकर कहो । क्योंकि मेरी आँखें उस दिनको अच्छी तरहसे देख रही हैं, जब आपको इसी दुराचारिणीके सम्मुख गिड़गिड़ाकर क्षमा प्रार्थना करनी पड़ेगी ।

केतुमती—दासी होकर तुझे लज्जा नहीं आती कि तू इस प्रकार बोलनेका साहस कर रही है ?

वसन्तमाला—नहीं । मैं सत्यपर हूँ और सत्य मनुष्यको निर्भय बना देता है ।

केतुमती—अगर यह खोटा पैसा तुझे स्वीकार है तो तुझे भी इसके साथ ही जाना होगा।

वसन्तमाला—हर्षसे, प्रसन्नतासे। मैं इनके साथ जाऊँगी। मैं साथ रहूँगी, और जिस प्रकार सुखके दिनोंमें इन्होंने मेरे साथ सद्-व्यवहार किया है, उसी प्रकार दुःखके दिनोंमें मैं इनकी सेवा करके अपने आपको कृतार्थ करूँगी। और जो अन्याय, इस प्रकाशपूर्ण नेकीके नक्षत्रके साथ, आप करनेको हैं, उसके विष-भरे प्रभावको दूर करनेका यथासम्भव यत्न करूँगी।

केतुमती—मैं आज्ञा देती हूँ कि तेरी जिह्वासे अब एक शब्द भी न निकले।

वसन्तमाला—यह असम्भव है। मैं बोलूँगी, बोलती रहूँगी और जब तक मुँहमें जिह्वा और जिह्वामें वाक्-शक्ति है तबतक नहीं रुकूँगी।

केतुमती—इतना साहस है?

वसन्तमाला—इससे भी अधिक है।

केतुमती—तू निर्लज्ज है।

वसन्तमाला—परन्तु झूठी नहीं।

केतुमती—सन्मुख बोलनेवाली है।

वसन्तमाला—परन्तु अनर्थ तोलनेवाली नहीं।

केतुमती—नादान!

वसन्तमाला—आपसे अधिक बुद्धिमान्!

केतुमती—वसन्तमाला!

वसन्तमाला—केतुमती!

अञ्जना—वसन्तमाला वसन्तमाला, होश करो। यह क्या कह रही हो?

वसन्तमाला—राजकुमारी, अब होश नहीं।

केतुमती—ये अपमानसूचक शब्द, यह तिरस्कार-भरा-सम्बोधन म नहीं सह सकती।

वसन्तमाला—इसकी पर्वाह किसे है ?

केतुमती—चुप रहो।

वसन्तमाला—यह असम्भव है।

केतुमती—तो यही हो।

(केतुमती तलवार लेकर वसन्तमालापर लपकती है। वसन्तमाला सिर झुकाती है। अन्य दासियाँ केतुमतीका हाथ पकड़ती हैं। अञ्जना आश्चर्यसे मूर्तिवत् खड़ी रहती है।)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—महेन्द्रपुरका राजमहल

समय—सायंकाल

[राजा महेन्द्रराय और रानी हृदयसुंदरी पत्र पढ़ रहे हैं]

रानी—नहीं नहीं, तुम्हारी ज़िह्वाने भूल की है। मेरी आँखोंको भ्रान्ति हुई है। परमात्माके लिए जल्द इसकी तरदीद करो और मेरे धड़कते हुए हृदयको शान्त होनेका अवसर दो।

राजा—भूल न मैंने की है न तुमने। यह जो कुछ दोष है अञ्जनाका है।

रानी—यह असम्भव है; यह मिथ्या दोषारोपण है। मेरी अञ्जना ऐसी नहीं है। मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती।

राजा—रेतकी दीवार, राजा विद्याधरके पत्रके सम्मुख, नहीं ठहर सकती।

रानी—पत्र बनावटी हो सकता है।

राजा—दूत राजा विद्याधरका विश्वास-पात्र है, इसलिए इसकी सम्भावना नहीं।

(एक ओर देखकर)

राजा—लो वह आ गई।

रानी—परमात्मा! परमात्मा! मैं क्या देख रही हूँ? अञ्जना और काले वेशमें!

(दौड़कर जाना चाहती है। राजा रोकता है।)

राजा—ठहरो।

रानी—कृपा करो, उसको अपने गृहमें आश्रय दो। उससे पूछो, उससे उत्तर माँगो, और जो कुछ वह कहना चाहती है, उसको कहने दो।—मैं आपसे भिक्षा माँगती हूँ, इस प्रार्थनाको अस्वीकार न करो, सिर न हिलाओ, यह आपकी पुत्री है।

राजा—मैं इस समयमें यही उत्तर दे सकता हूँ कि मेरे राज्यमें चोरों और डाकुओंके लिए स्थान है; परन्तु इसके लिए नहीं। इसलिए उसे कह दो, समझा दो, कि रातसे पहले पहले महेन्द्रपुरसे निकल जाय।

रानी—निकल जाय?

राजा—हाँ निकल जाय।

रानी—और कुछ नहीं हो सकता?

राजा—कुछ नहीं। (प्रस्थान)

रानी—मैं क्या करूँ? मैं क्या कर सकती हूँ?—परन्तु नहीं, पतिकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। उसका पालन आवश्यक है।

[वसन्तमाला और अञ्जनाका काले वेशमें प्रवेश।]

अञ्जना—माता—

रानी—इस शब्दसे मुझे पुकारनेका तुझे अधिकार नहीं रहा।

वसन्तमाला—महारानी—

रानी—अगर होता, तो तेरा वेष काला न होता। यह पत्र हृदयको चीरनेवाला न होता।

अञ्जना—शोक! जिस पत्थरसे भयभीत होकर मैं यहाँ आई थी, वह यहाँ भी मेरे आशाके शीशेको तोड़नेके लिए विद्यमान् है।

रानी—राजाने कहा है कि मेरे राज्यमें चोरों और डाकुओंके लिए स्थान है, परन्तु तुम्हारे लिए नहीं। और वास्तवमें तुम्हारा कुकर्म इसी योग्य है कि तुमसे इसी प्रकारका घृणित व्यवहार किया जाय। हाय अञ्जना, तेरी बुद्धिपर क्यों पर्दा पड़ गया! यदि किसी भूलसे पवनने तेरा परित्याग कर दिया था तो तू मुझे सूचना देती; परन्तु होनहारको कौन टाल सकता है!

अञ्जना—यह भी समयका फेर है कि जो माता-पिता मुझे देखकर प्रफुल्लित हो उठते थे, वे इस प्रकार कटु वचनोंका प्रयोग कर रहे हैं।

रानी—अगर तुझे पिताके पास जानेकी आज्ञा होती, तो तू देखती कि, जो पिता तेरा नाम सुनकर प्रसन्नतासे पागल हो जाता था, उसकी इस समय क्या अवस्था है!

वसन्त०—परन्तु यह निर्दोष है, क्यों कि मेरी आँखोंने सब कुछ देखा है। पवन युद्ध-भूमिसे लौटे, तीन दिनतक रहे और फिर अपने हाथकी अँगूठी देकर चले गये।

रानी—वह अँगूठी तुमने रानी केतुमतीको दिखाई?

वसन्तमाला—हाँ, परन्तु उसने विश्वास नहीं किया।

रानी—विश्वास न करनेका कारण?

वसन्तमाला—यह कि पवनकी प्रत्येक अँगूठीके नगमें एक काग़ज़ रहता है, जिसपर उनके हस्ताक्षर किये होते हैं। इस अँगूठीके नगसे जो काग़ज़ निकला है वह कोरा है।

अञ्जना—माताजी, विश्वास कीजिए, मैं निर्दोष हूँ। मेरी चादर निर्मल है।

वसन्तमाला—सूर्य्यमें प्रकाशके साथ गर्मी है, चन्द्रमामें धब्बे हैं, फूलोंमें काँटें हैं। परन्तु अञ्जनामें, सिवाय इसके कि इस अबलापर दोष लगाया गया है, और कोई दोष नहीं।

अञ्जना—मैं यह नहीं कहती कि आप मुझपर विश्वास करें या मेरे कथनको सत्य मान लें। मेरी केवल यह प्रार्थना है कि उनके युद्धसे लौटने तक मुझे यहाँ रहनेकी आज्ञा दी जाय।

रानी—बेटी, मैं क्या करूँ! तेरे पिता स्वीकार नहीं करते।

अञ्जना—हाय! अगर आचारका वृत्तान्त हृदयपर अंकित होता, तो मैं चीरकर दिखा देती कि मेरे शरीरकी एक एक नाड़ी इस दोषको मिथ्या कह रही है। माता, मैं शपथ खा सकती हूँ कि यह दोष मिथ्या है, सत्यका अंश नहीं। (जोरसे रो उठती है।)

रानी—(स्वगत) अब मेरा हृदय विवश हुआ जाता है। अब मैं नहीं रह सकती। इसका एक एक शब्द मुझे विश्वास दिला रहा है कि इसमें कोई भूल हुई है और यह निर्दोष है।

अञ्जना—(रुँधे हुए स्वरसे) माता!

रानी—बेटी, मुझे विश्वास हो गया है कि तू निर्दोष है, निष्पाप है।

अञ्जना—अब चिन्ता नहीं, दुःख नहीं, विषाद नहीं। मैं संकटसे नहीं डरती, आपत्तियोंसे नहीं डरती, परन्तु यह बात कि मेरी माताको भी मेरे आचारपर सन्देह है, मेरे लिए असह्य है। अब जब कि

आपने मुझपर विश्वास प्रकट कर दिया है, मुझपर आगकी वर्षा हो रही हो, भूमिसे गंधककी नदियाँ फूट रही हों, हजारों सर्प और विच्छू काट रहे हों, सारा संसार गालियाँ दे रहा हो, परन्तु यह बात कि मेरी जननीको मुझपर विश्वास है, मुझको अधीर न होने देगी और मैं प्रत्येक कष्टको सहर्ष सहूँगी। वसन्तमाला चलो, अब मैं गृह-त्यागसे नहीं डरती। वन और नगर दोनों एकसे हैं।

रानी—(दौड़कर गलेसे लगा लेती है) बस बेटी बस, अब मैं तुझे कहीं न जाने दूँगी।

[राजाका प्रवेश]

राजा—यह मेरी आज्ञाका पालन हो रहा है !

रानी—महाराज, इसका गत आचार, इसकी सरल बातें, इसका स्वच्छ चरित्र, इन सबसे प्रकट होता है कि यह दोषारोपण मिथ्या है। इसलिए इसपर दया कीजिए।

राजा—मेरे विचारमें परिवर्तन नहीं हो सकता।

रानी—प्रथम तो यह निर्दोष है, दूसरे आपकी पुत्री है, इस लिए—

राजा—हाँ, अबसे एक घण्टा पहले यह मेरी पुत्री थी, और मैं इसका पिता था। परन्तु इस पत्रने उस पैतृक सम्बन्धको काट दिया है। अब यह मेरी कोई नहीं।

रानी—ऐसी सुन्दर—

राजा—परन्तु कटार।

रानी—ऐसी मधुर—

राजा—परन्तु विष।

रानी—तुम्हारा चन्द्रमा है।

राजा—गहना हुआ ।

रानी—आशा है ।

राजा—टूटी हुई ।

वसन्तमाला—इस अबलाका प्रारब्ध फिर चक्करमें है ।

राजा—रानी, मैं अब इस बारेमें एक शब्द भी सुनना नहीं चाहता। जो कुछ कह चुका हूँ, उसमें परिवर्त्तन नहीं हो सकता। इस लिए इसे बाहर निकाल दो। मरे या बचे, इससे कोई प्रयोजन नहीं।

(राजाका प्रस्थान)

रानी—बेटी, अब मैं क्या करूँ ?

अञ्जना—महाराजकी आज्ञाका पालन, क्योंकि आपका यही धर्म्म है।—हैं, आप रो रही हैं! इसकी आवश्यकता नहीं। मैं प्रत्येक दुःख सह लूँगी, मुझे कष्ट न होगा।

रानी—परमात्मा! तूने नारियाँ क्यों उत्पन्न कीं ? मर्दोंके हाथकी पुतलियाँ बननेके लिए, उनके कथनपर अन्धोंके समान चलनेके लिए, उनकी आज्ञा माननेके अन्यायको सहन करनेके लिए ? क्या इसके लिए और प्रबन्ध नहीं हो सकता था ? क्या नारियाँ इस लिए उत्पन्न हुई हैं कि वे आजन्म मर्दोंकी ओर ताकती रहें, और मर्द उनको एक झिड़कीसे चुप करके जो मनमें आवे, उनसे करा लें। नारी इतनी अधम, इतनी निकम्मी है कि उसका कोई अधिकार नहीं, और मर्द ही जो चाहे कर सकता है! अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान्, मुझे दूसरे जन्ममें मनुष्य-योनि न दे, और अगर दे तो नारी न बना।

अञ्जना—माता, मेरे लिए दुःखित होनेकी क्या आवश्यकता है ?

आपका आशीर्वाद हर स्थानपर मेरे साथ रहेगा। अब जाती हूँ, प्रणाम।

रानी—बेटी, तुझे क्या आशीर्वाद दूँ। जिस प्रकार मैं विवश हूँ, उसी प्रकार मेरे शब्द विवश हैं। अच्छा, आशीर्वाद देती हूँ कि परमात्मा तुझे दूसरे जन्ममें स्त्री न बनावे।

वसन्तमाला—जले हुए हृदयकी जली हुई बातें।

अञ्जना—माता, जाती हूँ, आज्ञा दो।

वसन्तमाला—चल, पवित्रताके प्रकाशपूर्ण चन्द्रमा, चल और वनवासियोंके हृदयोंको उज्ज्वल कर।

रानी—वसन्तमाला, मेरी बेटीको दुःख न हो, यह राजमहलोंकी पली है।

वसन्तमाला—इसकी आप चिन्ता न करें। मैं भिक्षा माँगूँगी, दिन-रातका एक एक क्षण मेहनत मजदूरीपर लगाऊँगी, स्वयं भूखी रहूँगी, पर इसे भूखी न रक्खूँगी। हर एक दुःख और हर एक कष्टके समय इसके आगे ढालके सदृश खड़ी हो जाऊँगी। यही मेरी मालकिन थी, मालकिन है, और मालकिन रहेगी। मैंने अपना जीवन इसकी संगतिमें बिताया है। परन्तु जैसा सौम्य, जैसा निर्मल, जैसा उज्ज्वल चरित्र इसका आज है, वैसा कभी न था। यह स्वर्ण है, जो अग्निमें चमक रहा है; यह चन्दन है, जो रगड़ खाकर सुगन्धि दे रहा है; यह समुद्रकी चट्टान है, जो भयावनी और डरावनी लहरोंके मध्यमें धृष्ठतासे खड़ी है। इसे झुकानेवाला तीन लोकमें उत्पन्न नहीं हुआ।

(पर्दा गिरता है)

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

समय—दोपहर

(राजा वरुण सिंहासनपर बैठे हैं। दरबारी अपने अपने स्थानपर हैं। सामने पवन खड़े हैं।)

वरुण—कहो दूत, तुम क्या सन्देशा लाये हो ?

पवन—यही कि अभी समय बाकी है, तलवारे म्यानके अंदर हैं, वाण कमानोंके ऊपर नहीं चढ़े। इसलिए यदि आप चाहें तो युद्ध रोका जा सकता है।

वरुण—और यदि मैं इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दूँ तो ?

पवन—न्याय-प्राप्तिके लिए अनेकानेक वीरोंका रक्तपात आवश्यक है।

वरुण—रावण अद्भुत सृष्टिका पुरुष है। उसका हृदय भयसे कंपायमान है, परन्तु जिह्वासे निर्भयताके शब्द निकल रहे हैं।

पवन—वे केवल यही चाहते हैं कि खर-दूषणको छोड़ दिया जाय, उनके राज्यको स्वाधीन कर दिया जाय और हमेशाके लिए प्रतिज्ञा की जाय कि इस प्रकारका न्याय-रहित व्यवहार न किया जायगा।

वरुण—दूत, जाकर कह दो कि वरुण इस प्रस्तावका उत्तर युद्ध-भूमिमें केवल शस्त्रोंसे देगा।

पवन—तो परिणाम ?

वरुण—बस संग्राम।

पवन—राजन्, आप आपत्तिको क्यों निमंत्रण दे रहे हैं? लाखों स्त्रियोंको विधवा, लाखों बालकोंको अनाथ, और लाखों पुरुषोंको लाचार करनेके लिए क्यों उत्सुक हो रहे हैं?

वरुण—दूत, तुम दूतके अधिकारसे बाहर जा रहे हो।

पवन—इसलिए कि मेरा आपपर एक और भी अधिकार है।

वरुण—कौन-सा?

पवन—जो प्रत्येक भारतवासीको प्रत्येक भारतवासीपर प्राप्त है।

वरुण—यह कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? सिर नीचे नहीं झुक जाता?

पवन—क्या मैंने किसीके साथ अन्याय किया है? किसीपर अनुचित आक्रमण किया है?

वरुण—भारतवासी होकर भारतवासीके विरुद्ध युद्धको तैयार हुए हो, क्या यह लज्जाकी बात नहीं?

पवन—नहीं।

वरुण—तुम्हारी देशभक्ति तुम्हें यही शिक्षा देती है? तुम देशभक्त हो?

पवन—यदि देशभक्तिके ये अर्थ हैं कि अपने देशवालोंका, चाहे वे भूलपर ही क्यों न हों, पक्ष लिया जाय और अन्य देशवालोंकी, न्यायपर होते हुए भी, सहायता न की जाय, तो मैं देशभक्त नहीं, देशका शत्रु हूँ।

वरुण—तुम्हें चाहिए था कि मेरे साथ सम्मिलित होते।

पवन—क्यों?

वरुण—क्योंकि मैं भारतवासी हूँ, और भारतवासी होनेके कारण मेरा तुमपर विशेष रूपसे अधिकार है।

पवन—भारतवासी आप किसे कहते हैं?

वरुण—जो भारतमें निवास करता हो, जिसका शरीर भारतके अन्नसे पला हो, जिसकी बुद्धि भारतके घी और दूधसे परिपक्क हुई हो।

पवन—वह भारतवासी है?

वरुण—हाँ, ऐसा पुरुष भारतवासी है।

पवन—तो खर और दूषण दोनों भारतवासी हैं?

वरुण—नहीं।

पवन—क्योंकि उनके सम्बन्ध-नाते लंकावालोंसे हुए हैं?

वरुण—हाँ।

पवन—यह आपने पहले तो नहीं कहा था?

वरुण—पहले नहीं कहा था तो अब कहे देता हूँ।

पवन—तो शिवसेन, जो आपका मित्र और स्नेहपुरीका राजा है, वह भी दोषी है। क्योंकि उसने पाताल देशकी एक युवतीसे विवाह किया है,—राजन्, आप भारतवर्षके नामपर कलंक लगा रहे हैं, ऐसा कभी नहीं हुआ।

वरुण—तुम इस समय दूत होकर यहाँ आये हो या उपदेशक होकर?

पवन—दूत।

वरुण—तो ये बातें दूतोंकी मर्य्यादासे बाहर हैं। इसके बदलेमें यदि तुमको कैद कर लिया जाय; तो तुम्हें कौन बचा सकता है?

पवन—मेरी भुजायें।

वरुण—उनमें यह शक्ति है?

पवन—परीक्षा कर लो।

वरुण—सेनापति!

अश्वपति—महाराज !

वरुण—बाँध लो,—हैं, तुम चुप हो, आगे नहीं बढ़ते ?

अश्वपति—महाराज, दूतको क़ैद करना नीति और रीतिसे प्रतिकूल है।

वरुण—इसका निर्णय करना मेरा काम है।

अश्वपति—सत्य है महाराज।

वरुण—मैं आज्ञा देता हूँ कि इसे क़ैद कर लो।

अश्वपति—मैं अस्वीकार करता हूँ।

वरुण—अस्वीकार करते हो ?

अश्वपति—और इसी समय सेनापतिके पदसे पृथक् होता हूँ।

वरुण—यहाँ तक मजाल ?

अश्वपति—और इनके साथ ही इस राज्यका परित्याग करता हूँ।

वरुण—अश्वपति ! अश्वपति !

अश्वपति—नौकरी करते समय सोचा था, देशकी सेवा करूँगा; परन्तु जिस देश-सेवामें आत्माका हनन करना पड़े, उस देश-सेवासे बञ्चित रहना ही अच्छा है। आज नौकरीके साथ मैंने देशको छोड़ा है, और उसके साथ ही राज्यका त्याग किया है। परन्तु राजन्, आप भी आज एक देश-भक्त धर्म्म-परायण सेवककी सेवासे वञ्चित हो गये हैं। इस हानिका मोल कम नहीं।

पवन—राजन्, आप इस देवताके चरणोंकी धूलि लें।

वरुण—उपसेनापति ! अश्वपतिको पकड़ लो।

उपसेनापति—मेरे हाथ यह कृतघ्नता नहीं कर सकते।

वरुण—मैंने तुम्हें सेनापति नियत किया।

उपसेनापति—यह प्रलोभन भी मुझसे यह पाप नहीं करा सकता।

वरुण—दरबारियो ! तुम देखते हो, तुम्हारे राजाका कितना तिरस्कार हो रहा है ?

(दरबारी चुपचाप बैठ रहते हैं।)

वरुण—कोई नहीं बोलता, कोई नहीं उठता। सब विद्रोही हो गये, शत्रुसे मिल गये ?

सब—यह असम्भव है। हम ऐसा पाप कभी नहीं कर सकते।

वरुण—तो अश्वपतिको कत्ल कर दो।

सब—यह भी असम्भव है। हम अपने आदमियोंको कत्ल नहीं कर सकते।

वरुण—बहुत अच्छा, यों है तो यों ही सही। यह काम मुझे अपने हाथसे करना होगा।

(सिंहासनसे तलवार लेकर नीचे उतरता है।)

अश्वपति—(सिर झुकाकर) लीजिए, हर्षसे सिर काट लीजिए।

वरुण—विद्रोही मुँहफट ! सावधान हो !

अश्वपति—सावधान होनेकी क्या आवश्यकता है ?

वरुण—तलवार निकाल।

अश्वपति—मैं तलवार निकालूँ ? नहीं राजन्, यह नहीं हो सकता। संसारमें प्रलय हो जायगा, आकाशमें तारा-मण्डल छिन्न-भिन्न हो जायगा, पृथ्वी अपना स्थान छोड़ देगी, समुन्दरका जल ऊपर चढ़ जायगा, अगर वे यह देखेंगे कि एक सेवकने अपने स्वामीपर आक्रमण किया है। नहीं, मैं आक्रमण नहीं कर सकता।

वरुण—भीरु ! कायर !! आक्रमण कर।

अश्वपति—यह असम्भव है। महाराज, मैंने आपका अन्न खाया है।

वरुण—आक्रमण कर विद्रोही, आक्रमण कर।

अश्वपति—राजन्, मेरे हाथ आपपर नहीं उठ सकते।

वरुण—तो यही हो। इसी तरह मर।

(मारनेको तलवार निकालता है। पवन अपनी तलवार निकालता है।)

पवन—सावधान! मृत्युके ग्रास, सावधान!

अश्वपति—तुम कौन हो, जो स्वामी और सेवकके मामलेमें दखल देते हो? तुमको इसका अधिकार किसने दिया है?

पवन—जिसने मुझको मन और मनको विचारकी शक्ति दी है।

वरुण—लड़ना चाहते हो, युद्धकी साध है, तो आओ अभिलाष पूर्ण कर लो।

पवन—मैं उद्यत हूँ, परन्तु—

वरुण—परन्तु?

पवन—जो जलका बिन्दु उँगलीके सिरेपर पहुँच चुका है, और कोई दममें आपसे आप भूमिपर नष्ट हो जानेको है, उसे गिराते हुए लज्जा आती है। जो वृक्ष अपनी आयुको भोगकर मृत्युके दिनकी प्रतीक्षा कर रहा हो, और आपसे आप गिरनेको तैय्यार हो, उसपर कुल्हाड़ा मारते हुए संकोच होता है।

वरुण—अब जिह्वासे नहीं, तलवारसे बात करो।

(दोनों लड़ना चाहते हैं, अश्वपति बीचमें खड़ा हो जाता है।)

वरुण—अश्वपति, बीचसे हट जाओ।

अश्वपति—युवक, युद्ध करना है तो मुझसे कर लो। इसके पीछे किसी औरसे करना।

पवन—(तलवार फेंककर) तुमसे युद्ध करना मुझे स्वीकार नहीं।

वरुण—दूत, जाओ, जाओ, तुम्हारा काम हो चुका। अब रणभूमिमें भेंट होगी।

पवन—दूतका धर्म तो नहीं कहता कि आपको कुछ कहूँ; परन्तु, मनुष्यत्वके संकेतसे यह कहता जाता हूँ कि इस अनमोल हीरेका मोल पहचानिए, और इसके साथ उचित व्यवहार कीजिए। (प्रस्थान)

वरुण—इस उपदेशकी मुझे कुछ आवश्यकता नहीं, इसे अपने साथ ही ले जाओ।

अश्वपति—महाराज अब आज्ञा दीजिए, जाता हूँ।

वरुण—जाओ।

दूसरा दृश्य

स्थान—रास्ता

समय—तीसरा प्रहर

[पवन और अश्वपति]

पवन—वीर-शिरोमणि, आप पूजाके योग्य हैं।

अश्वपति—आपके शब्द मुझे शर्मिन्दा कर रहे हैं। मैं किसी योग्य नहीं।

पवन—सेनापतित्वको धूलिके समान छोड़ देना, राजाके कोपका भय न करना, और देशका त्याग तक स्वीकार कर लेना, यह सब ऐसी बातें नहीं हैं, जिन्हें साधारण पुरुष कर सके। आपसे मिलकर मैं अपने आपको सम्मानित समझता हूँ।

अश्वपति—मैं, आप जैसे वीरके इन शब्दोंके लिए, कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

पवन—तो अब आपका क्या विचार है ?

अश्वपति—अभी तक तो कोई उद्देश्य सम्मुख नहीं।

पवन—आप दुर्मतिनगरको वापस जायँगे ?

अश्वपति—असम्भव।

पवन—सेनापतिका पद फिर स्वीकार करेंगे ?

अश्वपति—कदापि नहीं। जिसे त्याग दिया है, जिसे छोड़ दिया है, अब उसे दोबारा ग्रहण नहीं कर सकता।

पवन—तो मेरी आपसे एक प्रार्थना है।

अश्वपति—कहिए।

पवन—धर्म और पाप, अत्याचार और स्वाधीनता, न्याय और लोभ, आपसमें टकरा रहे हैं। क्या आप न्याय और धर्मका पक्ष न लेंगे ?

अश्वपति—साहसी वीर, यह नहीं हो सकता। जिसकी सेवा की है, जिसका अन्न खाया है, जिसको स्वामी कहा है, जिसके आश्रयमें आधी बाल्यावस्था और आधी जवानी बिता दी है, जिसके पसीनेपर अपना रक्तपात किया है, उसके विरुद्ध तलवार नहीं चला सकता। जिस भूमिकी मिट्टीसे उत्पन्न हुआ हूँ, जिसके जल-वायुका भोग किया है, जिसमें शरीरका पालन-पोषण हुआ है, उस राज्यको हानि पहुँचानेमें मेरी भुजायें सहायता नहीं दे सकतीं।

पवन—आपका राजा बिल्कुल अन्यायपर है।

अश्वपति—परन्तु, फिर भी स्वामी है।

पवन—उसने आपका अपमान किया है,—तिरस्कार किया है।

अश्वपति—परन्तु फिर भी स्वामी है।

पवन—तो आप क्या करेंगे ?

अश्वपति—दुनियाके राजाकी सेवासे कुछ प्राप्त नहीं हुआ, अब चार दिन संसारके स्वामीकी भक्ति करके देखूँगा कि वहाँ भी न्याय और धर्म है या नहीं।

पवन—तो आप साधु हो जायँगे ?

अश्वपति—यही विचार है कि दुनियाके टंटे छोड़कर प्रभुका भजन गाऊँ, और मनुष्य-जीवन सफल करनेका प्रयत्न करूँ।

पवन—आप धन्य हैं।

अश्वपति—नहीं कुमार, आप धन्य हैं।

(एकका एक तरफसे और दूसरेका दूसरी तरफसे प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—पशुमुखा वनका भीतरी भाग

समय—सायंकालसे कुछ पहले

(अञ्जना और वसन्तमाला)

अञ्जना—वसन्तमाला, फिर गाओ। तुम्हारे गानेसे हृदयको शान्ति प्राप्त होती है।

वसन्तमाला—परमात्मा तुम्हें शान्ति दें। (गाती है)

भैरवी

प्रभु बिन कौन हमें अपनाए।
मात-पिता सब छूट गये हैं, नाते सारे टूट गये हैं।
बिगरी कौन बनाए, कौन हमें अपनाए, प्रभु बिन० ॥

नदिया गहरी, दूर किनारा, नइया फँसी आय मँझधारा।
पल पल हिचकोरे खाए, कौन हमें अपनाए, प्रभु बिन० ॥
दुख दर्दोंके हैं हम मारे, क्षमा करो अपराध हमारे।
द्वार तुम्हारे आए, कौन हमें अपनाए, प्रभु बिन० ॥
टूट गये हैं तार हृदयके, खंड हुए हैं चार हृदयके।
धीरज कौन धराए, कौन हमें अपनाए, प्रभु बिन०॥
उरमें शूल, पाँवमें छाले, दुख हैं देते दुनियावाले।
उनसे कौन बचाए, कौन हमें अपनाए, प्रभु बिन ० ॥

अञ्जना—यह क्या हो रहा है? यह क्या घट रहा है? सास दोष देती है, माता-पिता उसे स्वीकार करते हैं और निर्दोष अबलाको घरसे बाहर निकाल देते हैं। रात्रि वेगसे बढ़ी आ रही है और अन्धकार प्रकाशका स्थान ले रहा है। आँखें देखती थीं,—कान सुनते थे,—हृदय अनुभव करता था कि ऐसे समयमें बेटीको घरसे निकाल देना उचित नहीं। परन्तु किसीने विचार न किया और बिलखती हुई बेटीको मृत्युके मुखमें धकेल दिया। वायु चल रहा था, वृष्टि हो रही थी, बिजली चमक रही थी,—ऐसे समयमें, जब कि लोग चोर और डाकुओं तकको भी स्थान देनेके लिए अपने घरोंके द्वारा खोल देते हैं, पिता पुत्रीको कहता है कि मेरे राज्यमें तुम्हारे लिए आश्रय नहीं। (एकाएक वसन्तमालाके कन्धेपर हाथ डालकर) अच्छा वसन्तमाला, तुम इसे क्या कहोगी?

वसन्तमाला—अन्याय।

अञ्जना—नहीं।

वसन्तमाला—कठोरता।

अञ्जना—नहीं।

वसन्तमाला—भूल।

अञ्जना—यह भी नहीं।

वसन्तमाला—तो फिर ?

अञ्जना—अपने पापोंका फल, अपने कर्म्मोंकी कमाई।

वसन्तमाला—धोया हुआ फूल जितना पवित्र हो सकता है, आप उससे भी पवित्र हैं। शरद् ऋतुमें उदय होते हुए प्रातःकालके सूर्य्यकी पहली किरण जितनी मनोहर हो सकती है, आप उससे भी मनोहर हैं। नवजात बालक जितना निर्दोष हो सकता है, आप उससे भी निर्दोष हैं। फिर यह कर्म्मोंका फल किस प्रकार हो सकता है?

अञ्जना—यह दुनिया एक खेती है, जिसमें मनुष्य अपने गत जन्मके कर्म्मोंका फल काटता है, और आनेवाले जन्मके लिए नये बीज बोता है। जिस प्रकार वृक्ष अपने फलसे पहचाना जाता है, उसी प्रकार इस जन्मके दुख-सुखसे पिछले जन्मका हाल जाना जाता है। पति-वियोगका दुख कहता है कि मैंने पिछले जन्ममें किसी सत्यवती नारीको उसके पतिसे पृथक् किया होगा। मिथ्या दोषारोपणसे ज्ञात होता है कि मैंने पिछले जन्ममें किसीपर झूठे दोषकी स्थापना की होगी। यह न होता, तो मुझपर ये आपत्तियाँ कभी न आतीं।

वसन्तमाला—राजकुमारी!

अञ्जना—किसे कहती हो, किसे बुलाती हो?

वसन्तमाला—आपको।

अञ्जना—मैं और राजकुमारी? जिसे सिर छुपानेको कोई स्थान नहीं, जिसके पहननेको कोई वस्त्र नहीं, जिसके खानेको भोजन नहीं, वह राजकुमारी है। राजकुमारियाँ महलोंमें रहती हैं, मैं वनोंमें भटक रही हूँ। राजकुमारियाँ सुखसे दिन गुजारती हैं, मेरा एक एक क्षण दुख और खेदकी भेट हो रहा है। राजकुमारियोंको सब लोग मान और आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, मुझे माता-पिताने घरसे निकाल दिया है। राज-

कुमारियाँ स्वच्छ कपड़े पहनती हैं, मेरा वेष काला है। नहीं नहीं, मैं राजकुमारी नहीं, मुझे राजकुमारी न कहो,—मुझे व्यर्थ धोखा न दो।

वसन्तमाला—धैर्य्य रक्खो देवी, धैर्य्य रक्खो।

अञ्जना—दयामय प्रभो! धन-सम्पत्ति, सोना-चाँदी, राजपाट मैं कुछ नहीं माँगती। मुझे केवल पति-प्रेम और कलंक-रहित जीवन दो।

वसन्तमाला—सन्ध्याका समय हो गया है। किसी विश्रामके स्थान-पर चलना चाहिए।

अञ्जना—सखि, मुझे इस सायंकालकी कोई चिन्ता नहीं। मैं तो अपने प्रारब्धके सूर्य्यको रो रही हूँ, जो उदय होनेके साथ ही अस्त हो चुका है। तू बाहरी अन्धकारसे घबरा रही है, इस निर्जन वनसे तलमला रही है। परन्तु मैं उस अन्धकारको देख रही हूँ, जो मेरे हृदयके ऊपर छाया हुआ है और जिसके कारण मेरी, आँखें ही नहीं आत्मा भी अंधी हो रही है। (रोती है।)

वसन्तमाला—अन्धेरी रातके पीछे प्रकाशमान सूर्य्य उदय होता है, सायंकालके बाद प्रभात होता है, मृत्युके अनन्तर नव-जीवन प्राप्त होता है, और अमावास्याके पश्चात् दूजका चन्द्रमा दर्शन देता है।

अञ्जना—निस्सन्देह हर सायंकालके पीछे प्रभात और हर रात्रिके पश्चात् दिन प्रकट होता है। परन्तु मेरे प्रारब्धके आकाशपर न तारे चमकते हैं, न चन्द्रमा दिखाई देता है। मानो वह एक लम्बी रात्रि है, जिसके लिए कोई समाप्ति,—कोई अंत नहीं।

वसन्तमाला—न घबराओ देवी, न घबराओ। इस निराशाकी अँधेरी रात्रिमें आशाके तारेको आँखोंसे ओझल न होने दो। नहीं तो दुःखके अथाह समुद्रमें, जीवनकी नौका तबाहीकी चट्टानोंसे टकराकर चकनाचूर हो जायगी।

अञ्जना—उसे परमात्मा बचायगा।

वसन्तमाला—परमात्मा? वह है? जीता जागता है? न्यायकारी है? दिखाओ वह कहाँ है? मैं उससे पूछूँ, उससे लड़ूँ, उससे वाद-विवाद करूँ,—मगर नहीं, वह नहीं है। यह झूठी कहानी लोगोंने अपने लाभके लिए गढ़ी है। यह बनावटी नाम डरानेके लिए रक्खा गया है।

अञ्जना—बहन, क्या कह रही हो! क्या मेरे दुःखोंने तुम्हारे हृदयको नास्तिक बना दिया है?

वसन्तमाला—अगर नास्तिक बननेसे तुम्हारा लाभ हो, तो मैं नास्तिक बननेको तैय्यार हूँ।

अञ्जना—छिः! ऐसा न कहो, यह पाप है।

वसन्तमाला—तुम्हारे लिए मैं पाप करनेको भी तैय्यार हूँ।

अञ्जना—वसन्तमाला, इस पापी दुनियामें जहाँ पुत्र पिताका, और भाई भाईका शत्रु है, जहाँ स्वार्थ-सिद्धिके लिए लोग घृणितसे घृणित कार्य करनेपर उतारू हो जाते हैं, तुम्हारे जैसी सखी पाकर मैं फूली नहीं समाती। अगर परमात्माने अच्छे दिन दिखाये, और मैं किसी योग्य बनी, तो यह दिखा दूँगी कि मैं नेकी और—वसन्तमाला सँभालो, मेरी आँखोंके आगे अँधेरा छाता जा रहा है।

(अचेत होकर गिर जाती है।)

वसन्तमाला—परमात्मा! मेरा अपराध क्षमा कर और वह दिन जल्द ला कि ये आँखें इस पवित्रताकी पुतलीको फिर हँसता हुआ देखकर कृतार्थ हों। राह जाता हुआ बटोही यदि किसी अपरिचितको इस अवस्थामें देखे तो उसका हृदय रोने लग जाय और सहायतको

लिए सब कुछ करनेको उद्यत हो जाय। परन्तु, मैं ही हूँ कि साक्षात् लक्ष्मी अचेत पड़ी है, और मेरे पास न पंखा है न जल, कि इसे होशमें लानेका कोई उपाय ही कर सकूँ। (उठकर) वृक्षो, इसका ध्यान रखना, यह राजमहलोंकी पली है। (जलकी खोजमें प्रस्थान)

[दूसरी ओरसे ललिताका प्रवेश]

ललिता—यही है मेरे प्रेमके मार्गका पत्थर, मेरी आँखोंका काँटा, मेरी प्रसन्नताका डाकू, मेरे आनन्दका शत्रु। कौन बटोही !

[एक बटोहीका प्रवेश]

बटोही—कौन ? एक स्त्री ?

ललिता—हाँ, एक स्त्री। मगर तुम कौन हो, जो ऐसे निर्जन वनमें, जहाँ मनुष्य-जीवनका चिह्न ढूँढ़नेसे भी मिलना असंभव है, जहाँ यदि दिन-दोपहरको सूर्य्य डूब जाय तो उसका दिखाई देना भी कठिन है, मृत्युका ग्रास बननेके लिए आये हो ?

बटोही—मेरी मा मृत्युका ग्रास हो गई है, पिता कालका कौर हो चुका है और घरमें भाई है, सो वह भी मर रहा है। ऐसी दशामें मैं भी मौतको पुकारने आया हूँ।

ललिता—परन्तु कारण ?

बटोही—दरिद्रता !

ललिता—भारतवर्षकी भूमिमें यह सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। जहाँ घर घर दूधकी नदियाँ बह रही हैं, अन्नके अम्बार लगे हुए है, चाँदी सोनेकी कमी नहीं, वहाँ भी क्या कोई पुरुष दरिद्र हो सकता है ? और उसकी दरिद्रता इस सीमा तक पहुँच सकती है कि उसके पास कुछ खानेके लिए भी न रहे ?

बटोही—हो सकता है।

ललिता—कैसे ?

बटोही—(तलवार खींचकर) ऐसे !

ललिता—बटोही !

बटोही—नहीं डाकू । (भूमिपर गिरा लेना)

ललिता—तुम क्या चाहते हो ?

बटोही—तुम्हारी जान ।

ललिता—मेरे पास कुछ नहीं है ।

बटोही—मैं रुपयेके लिए नहीं मारता ।

ललिता—फिर ?

बटोही—तू पापिन है, पृथ्वीका भार है ।

ललिता—यह आवाज़ मैंने पहले भी सुनी है !

बटोही—हाँ, सुनी है ।

ललिता—परन्तु कहाँ ?

बटोही—आदित्यपुरमें ।

ललिता—तो—

बटोही—मैं चम्पा हूँ ।

ललिता—चम्पा ! चम्पा ! तू क्या कर रही है ! तेरी तलवार ओह !—

चम्पा—चुप, पापिनी पिशाचिनी । तूने मेरी शान्ति भंग कर दी है । आज तेरा रुपया मुझे सर्पकी नाईं डस रहा है, पापकी कमाई देखकर हृदय काँप रहा है । वह अपमान और यह अवनति देखकर भी तुझे शान्ति नहीं, जो तू इस अबलाके पीछे यहाँ भी आ गई है ।

ललिता—तो पापका प्रायश्चित्त करो । मुझे क्यों मारती हो ? हाथ जोड़ती हूँ, मुझे छोड़ दो ।

चम्पा—प्रायश्चित्त करूँगी। परन्तु, पहले तुझे मारकर और फिर सब बातें केतुमतीको सुनाकर। बस, अब समय नहीं, मरनेको तैय्यार हो।

वसन्तमाला—(नेपथ्यमें) जल मिल गया, परिश्रम सफल हुआ!

ललिता—(जोरसे चिल्लाकर) सहायता करो! सहायता करो!!

वसन्तमाला—कौन है? किधर है?

चम्पा—(गला दबाकर) चुप चाण्डाली!

ललिता—एक डाकू, एक स्त्रीको मार रहा है,—सहायता—

चम्पा—वह तेरी सहायता नहीं कर सकती।

[वसन्तमालाका प्रवेश]

वसन्तमाला—सावधान!

चम्पा—मैं डाकू नहीं।

(ललिताका चम्पाके नीचेसे निकलकर हाँफते हुए खड़े हो जाना)

चम्पा—(तलवार खेंचकर) चाण्डाली!

वसन्तमाला—(पीछेसे तलवार खींचकर) खबरदार!

चम्पा—मैं डाकू नहीं, चम्पा हूँ।

वसन्तमाला—चम्पा! तू यहाँ भी आ गई? क्या तेरे दिलको अभी तक सन्तोष नहीं मिला? देख, यह अबला राजकुमारी भूमिपर अचेत पड़ी हुई है, और मैं एक अँजुली जलके लिए वनमें घूम रही हूँ। परन्तु तू अभी तक—

चम्पा—वसन्तमाला!—

वसन्तमाला—उत्तरकी आवश्यकता नहीं, मैं सब समझ गई हूँ।

चम्पा—एक बात—

वसन्तमाला—एक शब्द नहीं, जाओ।

(चम्पाका सिर झुकाकर प्रस्थान)

ललिता—वह राजकुमारीको मारना चाहती थी। मुझे यह सूचना मिल गई और मैं इसे बचानेको ठीक समयपर पहुँच गई।

वसन्तमाला—मैं राजकुमारीकी तरफसे तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकाश करती हूँ। परन्तु ललिता, चम्पाकी शत्रुताका कारण?

ललिता—इसका कुछ पता नहीं लगता।

(पानीके छींटोंसे अञ्जना चैतन्य होकर खड़ी हो जाती है।)

ललिता—प्रणाम करती हूँ राजकुमारी!

अञ्जना—कौन ललिता! तुम और यहाँ?

वसन्तमाला—आज आपके प्राण इसीकी कृपासे बचे हैं। दुष्ट चम्पा, जिसने उस दिन साम्राज्ञी केतुमतीके आगे झूठ कह दिया था कि मैंने राजकुमारको महलमें नहीं देखा, डाकूके वेषमें यहाँ आई थी, और आपका वध करना चाहती थी। यदि यह भद्रा ठीक समयपर न पहुँच जाती, तो तुम्हारे प्राण बचने कठिन थे।

अञ्जना—ओह, यह कैसी नेक है और मैं कितनी बुरी हूँ! उस दिन मैंने साधारण-सी बातपर इसका तिरस्कार करके इसे महलसे निकलवा दिया था। मुझे क्षमा करो, मैंने तुम्हारा दोष किया है।

ललिता—नहीं राजकुमारी, नहीं, दोष मेरा ही था। मैं उसे स्वीकार करती हूँ,—आपको इस अवस्थामें देखकर मेरी आत्मा थर्रा रही है।

अञ्जना—यह समयका फेर है और कुछ नहीं। कहो आदित्य-पुरमें सब कुशलसे हैं।

ललिता—कुशल? जहाँसे आप ऐसी धर्मात्मा देवीको अपमान सहित निकाल दिया जाय, वहाँ कुशल हो सकती है!

अञ्जना—तुम इस वनके रास्तोंको जानती हो ?

ललिता—पूर्णतया ।

अञ्जना—तो यह बता दो कि यह जो तीन रास्ते फटते हैं, उनमेंसे किसपर जाना अच्छा होगा ?

वसन्तमाला—जिधर सिंह आदिका भय न हो ।

ललिता—बाईं ओर चले जाइए ।

अञ्जना—अच्छा ललिता, परमात्माकी कृपा हुई तो फिर मिलाप होगा ।

ललिता—परमात्मा वह दिन जल्द लावे !

(अञ्जना और वसन्तमालाका प्रस्थान)

ललिता—जिस कामके लिए आई थी, वह पूर्ण हुआ । अब इनका बचना, कठिन ही नहीं, किन्तु, असम्भव है । परन्तु चम्पाका क्या किया जाय ! वह भण्डा फोड़नेपर उतारू हो रही है । यदि उसने केतुमतीको सब कुछ बता दिया तो फिर ?—अच्छा देखा जायगा । यह कभी नहीं हो सकता । (दूसरी ओरको प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—दुर्मतिनगरका अन्तःपुर

समय—दोपहर

[प्रेमसुंदरी अकेली खड़ी है ।]

प्रेमसुन्दरी—परमात्मा ! परमात्मा ! ! कितनी भयावनी और हृदय-विदारक आवाजें आ रही हैं और प्रत्येक आवाज़के साथ सैकड़ों

मनुष्योंके जीवन समाप्त हो रहे हैं। देशके बालको! दुःखके अश्रु बहाओ, तुम अनाथ हो जाओगे। देशकी स्त्रियो! शोक मनाओ, तुम विधवा हो जाओगी। मकान उजाड़ हो जायँगे, बाज़ार वीरान हो जायँगे। परंतु क्यों? क्या जंगलों और वनोंमें हिंस्र जन्तुओंकी कमी है, जो मनुष्य मनुष्यके जीवनपर आक्रमण करना चाहता है?

[एक सेवक आता है।]

प्रेमसुन्दरी—क्या समाचार है?

सेवक—रंग बुरे हैं। हमारी सेना भाग रही है। (जाता है।)

प्रेम०—मैंने बहुत कहा, परन्तु उन्होंने न सुना। मैंने बहुत अनुनय किया, परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। अब वही होनेको है, जिसका मुझे भय था, और उन्हें विचार भी न था।

[सेवक आता है।]

प्रेम०—अब क्या हाल है? सेना रुकी?

सेवक—नहीं, सेना रोकनेका प्रयत्न करनेपर भी नहीं रुकी। पराजय समीप सरक रही है।

प्रेम०—राजा कहाँ हैं?

सेवक—बची-खुची सेनाको लड़नेके लिए तैय्यार कर रहे हैं।

(जाता है।)

प्रेम०—तो पराधीनता, दासत्व और अपमानकी घड़ियाँ द्वारपर पहुँच गईं, अब कोई दममें अन्दर आनेको हैं। अच्छा, जो होना है हो जाय, चिन्ता किस बातकी हैं,—हैं, इतना कोलाहल! इसका कारण क्या हो सकता है?

[सेवक आता है।]

सेवक—सम्राज्ञी।

प्रेमसुन्दरी—क्या हुआ ? यह कोलाहल कैसा है ?

सेवक—शत्रु दुर्गके अन्दर आ गये।

प्रेमसुन्दरी—हमारी दुर्ग-रक्षक सेना ?

सेवक—भाग गई।

प्रेमसुन्दरी—अश्वपति ?

सेवक—कभीका साधु हो चुका।

प्रेमसुन्दरी—छोटा सेनापति ?

सेवक—मारा गया।

प्रेमसुन्दरी—तुम्हारे राजा ?

सेवक—पकड़े गये।

प्रेमसुन्दरी—कुमार ?

सेवक—पता नहीं है।

प्रेमसुन्दरी—हा दैव ! मैं जानती थी कि इस अन्यायका कड़वा फल चखना पड़ेगा, परन्तु यह सुपनेमें भी खयाल न आया था कि वह भयानक समय इतना निकट,—इतना समीप है। अदूरदर्शी मनुष्य बलके भरोसेपर संसारकी आवाज़की अपेक्षा न करके ऐसे काम कर डालता है जिन्हें न्याय, सभ्यता और समाज घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं; और समझता है कि मुझे कोई एक कटु शब्द तक न कह सकेगा। परन्तु, परमात्माका न्याय-नियम कौन जानता है ! देखते देखते भूमि आकाश, और चिउँटी हाथी, बन जाती है, और इस प्रकारकी भयानक आँधी उठती है कि गर्वमें अंधा हुआ अन्यायी मनुष्य ऊँचे वृक्षके समान जड़से उखड़ जाता है। दुखिया प्रसन्न होते हैं और सताई हुई जिह्वायें ईश्वरको धन्यवाद देती हैं। परन्तु इस परि-

णामपर कुछ ऐसी आँखोंको भी रोना पड़ता है जिनका वास्तवमें कोई दोष नहीं होता।

[वरुणका प्रवेश]

वरुण—प्रेमसुन्दरी!

प्रेमसुन्दरी—हमारी शक्तिके सामने खड़ा होनेका किसको साहस था? अनगिनत सेना, हर प्रकारके शस्त्र, भारतवर्षके सारे राजाओंकी मैत्री, विश्वव्यापी कीर्ति। क्या यह सब ऐसी वस्तुयें न थीं कि यदि कोई आक्रमण करता तो पिसकर सुर्मा हो जाता और उसे अपना बचाव करना कठिन हो जाता? परन्तु अन्यायके दूषित कर्मने, गर्वके एक अंधे कामने हमें आकाशसे भूमिपर पटक दिया और आज भारतवर्षके लोग यह सुनकर चौक उठेंगे कि लंकाद्वीपके साधारण राजा रावणने, केवल आदित्यपुरकी अल्प सेनाकी सहायतासे, दुर्मतिनगरकी शिक्षित सेनाको पराजित कर दिया।

वरुण—प्रेमसुन्दरी, तू क्या बक रही है?

प्रेम०—कौन! राजा! मुझे झूठी सूचना मिली थी?

वरुण—नहीं, मैं अभी छूट कर आया हूँ। बंदीगृहकी ताली कहाँ है?

प्रेम०—जिसमें खर-दूषण बंद हैं?

वरुण—हाँ, वही। मैं इस आक्रमणको व्यर्थ और विजयको निष्फल बनाना चाहता हूँ।

(प्रेमसुन्दरी ताली दे देती है।)

प्रेमसुन्दरी—परन्तु किस तरह?

वरुण—खर-दूषणको मृत्यु-दण्ड देकर।

प्रेमसुन्दरी—तुम क्या यह करोगे?

वरुण—मैं यह करनेके लिए ही जा रहा हूँ।

प्रेमसुन्दरी—(हाथ पकड़कर) ठहरो ! मेरी प्रार्थना—

वरुण—युद्धके समय स्त्रीका दर्शन करना भी पाप है।

(धक्का देकर प्रस्थान)

प्रेमसुन्दरी—वह गया। परन्तु क्या वह यह कर सकेगा ? वह अबोध है, नहीं जानता कि नदीके किस भयानक तीरपर, पहाड़की किस टूट पड़नेवाली चोटीपर चढ़ रहा है। वह नहीं जानता कि उसके पैरोंके नीचे पापका ज्वालामुखी पर्वत अजगरके समान अपना मृत्युका-सा भयानक मुँह खोले पड़ा है। परमात्मा मुझे बल दे कि मैं अपने देवताको इस पाप-कर्मसे बचा सकूँ। (प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

समय—प्रभात

[अञ्जना गा रही है।]

खोज रहे नैन तुम्हें आओ प्राणप्यारे।
रजनी गई भोर भई, चकई पिया पास गई,
आय देव दरस देहु, नयननके तारे॥ खोज रहे०॥
पंछी बन बोल रहे, डार डार डोल रहे,
देखके उदास मोहि, करत हैं इशारे॥ खोज रहे०॥
दीन हुई छीन हुई, मानसे विहीन हुई,
मात पिता सास ससुर, गारियाँ निकारे॥ खोज रहे०॥
गौरव सब नष्ट भयो, निसादिन मोहि कष्ट भयो,
कौन-सी उमंग बची, मनको जो उभारे॥ खोज रहे०॥
आओ प्रभु धाओ प्रभु, दासीको बचाओ प्रभु,
तुम्हरे बिन जगतमाहिं, और कौन टारे॥ खोज रहे०॥

सूर्य्य चढ़ता है, ढल जाता है। चन्द्रमा निकलता है, छिप जाता है। नदियाँ भरती हैं, सूख जाती हैं। परन्तु मेरे प्रारब्धमें न परिवर्तन होता है न कोई सुभीता दिखाई देता है। प्राणनाथको युद्धमें गये हुए आठ मास व्यतीत हो गये हैं। परन्तु अभी तक उनकी वापसीका कोई समाचार नहीं मिला।

[वसन्तमालाका प्रवेश]

वसन्तमाला—क्यों राजकुमारी! क्या विचार रही हो, सन्ध्या कर चुकीं?

अंजना—हाँ, सन्ध्याके पश्चात् उनके नामका स्मरण कर रही हूँ, जिनका दर्जा जगत्पतिके बाद स्त्रीके लिए सर्वोपरि है। कहो, साधु महात्मासे बातचीत हुई?

वसन्तमाला—बहुत अच्छी तरहसे। राजकुमारी, जिस दुर्मति-नगरके राजाके साथ राजकुमार युद्ध करने गये हैं, ये महात्मा उसके सेनापति थे। युद्ध प्रारम्भ होनेसे पहले राजकुमार पवन वरुणकी राज-सभामें दूत बनकर गये, और उसे समझाया कि तुम्हारा यह काम राजनीतिके विरुद्ध है, इसलिए बेहतर यही है कि खर-दूषणको मुक्त कर दो, उनका राज्य फेर दो और युद्धका विचार मनसे निकाल दो। परन्तु बलके गर्वमें आकर वरुणने सेनापतिको आज्ञा दी कि पवनको बंदी कर लो। सेनापतिने इसे स्वीकार न किया और वे अपने पदसे पृथक् हो गये। अब वही सेनापति यहाँ साधु बनकर ईश्वरकी आराधनामें लीन हैं।

अंजना—तो वरुणने क्या उन्हें पकड़ लिया?

वसन्तमाला—नहीं, ये कहते हैं कि वे तलवार लेकर खड़े हो गये—

अंजना—तो वे कुशलसे हैं ?

वसन्तमाला—हाँ ।

अंजना—परमात्मा ! तेरी अपार दया ।

वसन्तमाला—तो उन्हें क्या उत्तर दूँ ? वे कहते हैं कि मैं तुम दोनोंको साथ ले चलता हूँ और पवनके सुपुर्द कर आता हूँ । इस बारेमें तुम्हारा क्या विचार है ?

अञ्जना—वसन्त, मेरा विचार क्या हो सकता है ? जो नाव समुन्दरमें हिचकोरे खा रही है, जो दीवार गिरनेको है, जो दीपक बुझनेको है, जो वृक्ष टूटनेको है, उसका विचार क्या हो सकता है ? जाओ । जाकर कहो, मैं इस प्रस्तावसे सहमत हूँ ।

वसन्त०—तो तैय्यारी करो, मैं उनको तैय्यार होनेके लिए कहती हूँ ।

अंजना—मैं तैय्यार होती हूँ । तुम जाकर उनको तैय्यार करो ।

(प्रस्थान)

वसन्तमाला—इस समय राजकुमारीके मुखपर कैसा तेज है ! आँखोंमें कैसी प्रसन्नता है ! वह उदासी जो उसे प्रतिक्षण घेरे हुए थी, अब कहाँ है ? वह निराशा जो मेघके सदृश इसपर छाई रहती थी, अब कहाँ है ? आशा, तू कैसी मायाविनी है, मैं तुझे नमस्कार करती हूँ ।

[अश्वपतिका प्रवेश]

अश्व०—वसन्त, अञ्जनाका क्या विचार है ?

वसन्त०—महाराज, वह आपका प्रस्ताव स्वीकार करती है ।

अश्वपति—तो वह चलनेको तैय्यार है ?

वसन्तमाला—हाँ महाराज । देखिए, वह आप आ रही है ।

[अञ्जनाका प्रवेश]

अश्वपति—तो पुत्रि, तुम तैय्यार हो ?

अञ्जना—नहीं महाराज, मैं जाना नहीं चाहती।

अश्वपति—यह क्या, अभी तो तुमने वसन्तमालाको कहा था कि मैं तैय्यार हूँ।

वसन्तमाला—यह क्या राजकुमारी, अभी तो तुम इस बातके पक्षमें थीं। अब पल-भरमें क्या हो गया ?

अञ्जना—मेरा विचार बदल गया है।

अश्वपति—परन्तु क्यों ?

अञ्जना—वे इस समय युद्ध-भूमिमें यशःप्राप्तिका काम कर रहे हैं; देशकी सेवा कर रहे हैं, संसारमें अपने देशका सर ऊँचा कर रहे हैं, मैं जाकर उनके हृदयको दूसरी ओर कर दूँगी तो सारा काम चौपट हो जायगा। उनके अद्वितीय बलमें न्यूनता आ जायगी, पराक्रम थोड़ा हो जायगा। मैं यह पाप-कर्म नहीं कर सकती,—अपने सुखपर देश और जातिके यशको निछावर नहीं कर सकती। इसी निर्जन वनमें रहूँगी, दुःख और कष्ट सहूँगी। जानती हूँ, कि चाहूँ तो इस दुःखका अन्त हो सकता है, परन्तु एक भारत-ललनामें इतना स्वार्थ नहीं हो सकता कि अपने लिए देशको बदनाम कर दे।

वसन्तमाला—राजकुमारी, मैं इतने वर्षोंसे आपके साथ हूँ, आपके सद्गुणोंपर मोहित हूँ, परन्तु यह आशा न थी कि आपमें इतना अधिक त्याग भी है, इतना धैर्य्य भी है।

अश्वपति—वसन्तमाला, तू धन्य है, जो इस पवित्रताकी देवीकी संगतिमें है, यह वन धन्य है जहाँ यह अपने काले दिन गुजार रही

है और मैं भी धन्य हूँ जिसकी कुटियामें यह निवास कर रही है। रहो देवी, इसी स्थानमें रहो। इस वनके काँटे तुम्हारे लिए पुष्प बनें, हिंस्र पशु तुम्हारे स्नेह-भाजन बनें।

वसन्तमाला—ऐसी शुभ भावनाओं और कामनाओंकी पुतलीपर कैसी घोर आपत्ति पड़ी है! परमात्मा! जल्दी सुन।

अश्वपति—बेटी, पिञ्जरेमें कोयलको डाला जाता है, कौएको नहीं; कोल्हूमें ईखको पीड़ा जाता है, सरकण्डेको नहीं; शिलापर चन्दनको रगड़ा जाता हैं, पत्थरको नहीं; अग्निमें घीको जलाया जाता है, तेलको नहीं। इसी प्रकार प्रकृति माता भी कष्टके लिए इस खोटे संसारमेंसे असाधारण आत्माओंका ही चुनाव करती है। (प्रस्थान)

अञ्जना—वसन्तमाला, प्रकाश दिखाई दिया था, अब फिर अन्धकार हो गया।

वसन्तमाला—इस अन्धकारके पीछे अनन्त प्रकाश आ रहा है।

छट्ठा दृश्य

स्थान—दुर्मतिनगरका बन्दीगृह

समय—रात्रिका तीसरा पहर

[अकेला वरुण]

वरुण—हृदय, तू अभी तक क्यों धड़क रहा है? अभिमान, राज्य, स्वाधीनता, प्रभुत्व सब कुछ जा चुका है। अब शरीरमें क्या बाकी है? थोड़ा-सा रक्त, जिसे लेनेके लिए प्रातःकालके सूर्य्यकी पहली किरणके साथ वधिक आनेवाला है। फिर भी तू किसके लिए धड़क रहा है? पागल! दीवाने! दुनिया द्वार बंद

करके सो रही है, लोग सुखके स्वप्नमें मग्न हैं, और उस व्यक्तिका किसीको ध्यान तक नहीं जो कभी उनपर राज्य करता था; परन्तु आज क़ैदखानेमें पड़ा हुआ अपने अन्तिम समयकी प्रतीक्षा कर रहा है। तिसपर भी तू क्यों धड़क रहा है?—बच जाऊँगा, बचा लिया जाऊँगा?—नहीं, यह असम्भव है। आशा अपने शिकारको बरग़ला कर एकान्त स्थानमें ले जाती है। पहले अपने दगाबाज़ हाथोंसे उसके सामने अतिशय मनोहर चित्र बनाती है, जिसका ऊपरी भाग बादलोंके अन्दर होता है; और उनके सफेद किनारोंपर सुनहले अक्षरोंमें उसका नाम लिख देती है। यह देखकर जब आँखें मस्त हो जाती हैं, तब, अपनी जगन्मोहिणी वीणा निकालकर उसपर ख़ुशामदके मधुर गीत गाती है जिन्हें सुनकर कान दूसरी आवाज़ोंकी तरफसे बहरे हो जाते हैं। फिर, विचारको बेहोश करती है, बुद्धिको परे हटाती है और मनुष्यको पूर्णतया अपने वशमें कर लेती है। एकाएक भूकम्पका अनुभव होता है,—फिर वह चित्र मिट जाता है, राग बंद हो जाता है, और आशा अपने शिकारको सिंहासनसे भूमिपर पटक देती है।—कौन? कौन आ रहा है? क्या प्रातःकाल हो गया? हृदय, तू अब भी धड़क रहा है!—मूर्ख दीवाने, तेरे लिए कोई आशा नहीं।

[प्रेमसुन्दरीका प्रवेश]

प्रेमसुन्दरी—आँखो! तुम क्या देख रही हो?

वरुण—'आशा'के बाद जीवन-भरमें मैंने तुझसे धोखा खाया है। तू भी उसीके समान मनोहर, उसीके समान मधुर, परन्तु अन्तमें उसीके समान डाकिनी निकली है; और इस समय मैं तुम दोनोंको देखना नहीं चाहता,—जा! दूर हो!! मुझे तेरी आवाज़से भय लगता है।

प्रेम०—नाथ !—

वरुण—हत्यारिणी, मुझे आरामसे मरने दे और मेरे जीवनकी अन्तिम घड़ियोंको शोकातुर न कर।

प्रेमसुन्दरी—दूसरेका घर बचाते बचाते मैंने अपना सर्वस्व लुटा दिया। हाय नाथ, अगर मैं जानती कि इसका परिणाम यह होगा तो अपने हाथोंको काट देती, आँखोंको अंधा कर लेती।

वरुण—अपने पतिको शत्रुके हाथ देनेवाली! उसकी मृत्युका सामान करनेवाली! खर और दूषणके बदलेमें तूने मेरा यह हाल किया है जो देख रही है, और जो होने वाला है सो अभी देख लेगी।

प्रेमसुन्दरी—(ऊपर देखकर) आकाश! आज हम भूमिपर हैं, क्या वहाँ भी स्थान न मिलेगा?

[पवनका प्रवेश]

प्रेमसुन्दरी—कौन?

पवन—महारानी! महाराज प्रह्लाद विद्याधरका पुत्र प्रणाम करता है।

प्रेमसुन्दरी—क्यों पवन! अत्याचारी, पतित, नराधम, यह तेरी करतूत है जो मैं अपने देवताके मुखसे, जिसने कभी मुझे तीखी दृष्टिसे न देखा था, जिसने मुझे कभी कठोर वचन न कहा था, वे बातें सुन रही हूँ कि जिनसे मेरा हृदय टूट रहा है। तूने क्या मुझसे प्रतिज्ञा नहीं की थी कि महाराजका बाल तक बाँका न होगा? क्या तूने मुझको विश्वास नहीं दिलाया था कि उनकी गिरफ्तारी उनकी भलाईका रास्ता साफ करेगी? तेरे कथनपर एक स्त्रीने विश्वास किया, दो प्राणी बचाये, और उसका परिणाम यह है कि

उसके हृदयपर वह चोट पहुँचनेको है जिससे उसका बचना असम्भव है। तू मुझे प्रणाम करता है, मैं तुझे धिक्कारती हूँ।

पवन—महारानी—

प्रेमसुन्दरी—मैं कुछ सुना नहीं चाहती। प्रतिज्ञा याद कराती हूँ।

पवन—पहरेदार!

[पहरेदारका प्रवेश]

पवन—महाराजको मुक्त कर दो।

पहरेदार—मुक्त कर दूँ? इन्हें तो आज ही, अभी—

पवन—(गर्जकर) बस तुम नौकर हो। यह व्यक्ति मेरे सुपुर्द है, छोड़ दो।

(पहरेदार वरुणकी जञ्जीरें खोल देता है।)

पवन—जाओ महाराज, आप स्वाधनि हैं। जाइए महारानी, प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।

प्रेमसुन्दरी—मैंने क्रोधमें तुम्हें बुरा भला कहा है, मुझे क्षमा करो।

पवन—प्रतिज्ञाकी पूर्तिमें विलम्ब हुआ है, उसके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ, महारानी!

वरुण—प्रिये, निराशामें मैंने तुमको जो वचन कहे हैं, अब उन्हें वापस लेता हूँ, मुझे क्षमा करना।

प्रेमसुन्दरी—इसकी आवश्यकता नहीं प्राणनाथ!

पवन—यहाँसे अब आप शीघ्र चले जाएँ, मैं प्रार्थना करता हूँ।

प्रेमसुन्दरी—परन्तु पुण्डरीक?

पवन—वह आपसे पहले छोड़ा जा चुका है। आप चले जायँ।

(राजा वरुण और रानी प्रेमसुन्दरीका प्रस्थान)

पवन—विजय क्या सभीको अंधा कर देती है, जो आज रावण इतने अत्याचारपर तुला हुआ है कि वरुण और उसके पुत्रको मर-

चाना चाहता है ? मालूम होता है कि पापका पथ विजयके बहुत निकट,—उससे बिल्कुल मिला हुआ है। यदि यही बात है तो परमात्मा मुझको भविष्यमें विजयी न बनाना, मैं विजय नहीं चाहता।

[रावणका प्रवेश]

रावण—पवन, तुम यहाँ हो ? ऐसे समयमें ?

पवन—हाँ राजन्, आप भी तो यही हैं।

रावण—मुझे तो यहाँ काम है।

पवन—मुझे भी कामहीके लिए यहाँ आना पड़ा है।

रावण—मैं वरुणको क़त्ल कराने आया हूँ।

पवन—मैं उसे छोड़ने आया था।

रावण—नहीं, यह असम्भव है। उसने न्याय, सभ्यता और प्रकृतिके नियमको पद-दलित किया है। उसे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिए, और मिलेगा। वह कहाँ है।

पवन—मैंने उसे छोड़ दिया है।

रावण—छोड़ दिया है ?

पवन—हाँ, छोड़ दिया है।

रावण—मेरी आज्ञाके विना, अपनी इच्छासे ?

पवन—हाँ राजन्, आपकी आज्ञाके विना।

रावण—तुम्हारा इतना साहस है ?

पवन—उसे चूँकि मैंने ही क़ैद किया था, इसलिए छोड़नेका अधिकार भी मुझे प्राप्त था।

रावण—और पुण्डरीक ?

पवन—उसे भी छोड़ दिया।

रावण—क्यों ?

पवन—वह अभी बालक है, न्याय उसे कोई दण्ड देना स्वीकार नहीं कर सकता।

रावण—यह मनमानी कार्य्यवाही तुम इस तरह करते हो, मानो तुम ही राजा हो और मैं कोई नहीं हूँ।

पवन—नहीं राजन्, नहीं, जिस समय वरुण खर और दूषणको मारनेके लिए जा रहा था, उस समय, उसकी स्त्रीने, मुझसे यह प्रतिज्ञा लेकर कि उसे छोड़ दिया जायगा, उसे मेरे हाथ पकड़वा दिया था और मैने खर-दूषणके प्राण बचानेके लिए यह प्रतिज्ञा कर दी थी।

रावण—युद्ध और प्रेमके समय सब कुछ धर्म है। इसलिए झूठी प्रतिज्ञा पाप नहीं।

पवन—यदि युद्ध और प्रेममें धर्म-अधर्म एक हैं, तो फिर पापकी संसारमें हस्ती नहीं, क्यों कि संसार-राग-द्वेषके सिवाय और कुछ नहीं है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि वरुणपर, नहीं तो मुझपर ही, कृपा कीजिए और उसे क्षमा कर दीजिए।

रावण—कुमार, तुमने दण्डके योग्य काम किया है। परन्तु तुम्हारे पिताकी मैत्रीके विचारसे मैं तुम्हे क्षमा करता हूँ। मगर वरुणका बचना असम्भव है। मैं उसे अभी पकड़ मँगवाता हूँ। सावधान, अब मैं एक नहीं सुनूँगा।

(जानेको तैय्यार होता है। पवन रोकता है।)

पवन—नहीं महाराज, नहीं। यह नहीं हो सकता।

रावण—तुम्हारी इतनी मजाल ?

पवन—प्रतिज्ञाके लिए सब कुछ करना होगा राजन्!

रावण—तो तलवार निकालो।

पवन—आप मेरे पिताके मित्र हैं, इसलिए मुझे आपपर आक्रमण करना नहीं सोहता।

रावण—तलवार निकालो! तलवार निकालो!

पवन—नहीं राजन्, यह कैसे हो सकता है?

रावण—तो रास्ता छोड़ दो।

पवन—उसके लिए आपको मेरी लोथपरसे गुज़रना होगा।

रावण—भीरु! निकम्मे!! इस युद्धमें तेरा सिर फिर गया है। मैं उसे ठीक करूँगा। तलवार निकाल।

पवन—नहीं, यह तलवार आपपर आक्रमण नहीं करेगी।

रावण—अच्छा, तो फिर मेरा—(तलवार मारना चाहता है)

[एकाएक प्रहसितका प्रवेश]

प्रहसित—सावधान!

रावण—बलिदानके बकरे! क्या तू भी मरना चाहता है?

पवन—प्रहसित, हट जाओ।

प्रह०—राजकुमार, मेरे होते हुए आपके शरीरतक कोई शख्स नहीं पहुँच सकेगा।

रावण—सिपाहियो, पकड़ लो।

(रावणके दस सिपाहियोंका आक्रमण और प्रहसितको घेर लेना।)

प्रहसित—अच्छा! यह तो यही सही।

[प्रहसित ताली बजाता है। पच्चीस सिपाही आ जाते हैं।]

प्रह०—सिपाहियो, राजा रावणको और उसके इन दस साथियोंको बाँध लो। (सिपाही लड़नेको तैयार होते हैं।)

[एकाएक खरका प्रवेश]

खर—ठहरो ! मनुष्य-जीवन इतने सस्ते नहीं हैं कि उनको इस प्रकार नष्ट कर दिया जाय। राजन्, यह आप क्या कर रहे हैं ? जिस भारतवर्षके एक वीरने आपका इस युद्धमें साथ दिया है, जिसने रण-भूमिमें अद्भुत पराक्रम दिखाया है, जिसकी सेनाने हमें विजय दिलाई है, जिसके बाहुबलने हमारे प्राण बचाये हैं, उसीके मारनेको तलवार निकालते हुए, क्या लज्जा नहीं आती ? जिसकी प्रशंसाके शब्द अभी वायु-मण्डलमें गूँज रहे हैं, जिसकी माहिमाके गीत अभी आकाशके पर-माणुओंमें थरथराहट पैदा कर रहे हैं, जिसकी विजय-मालाके फूल अभी कुम्हलाने नहीं पाये, जिसकी वीरताकी याद अभी भूलने नहीं पाई, उसी देवतापर आक्रमण करते हुए क्या हृदयमें संकोच नहीं होता ? वास्तवमें यदि ये तुम्हारी सहायता न करते तो हम दोनों भाई बंदी-गृहमें सड़-सड़कर मर जाते, हमारा राज्य सदाके लिए हाथसे जाता रहता, और आप लंकामें बैठे बैठे हमारी यादमें आहें भरते—मनुष्य इतना नीच, इतना कृतघ्न, हो सकता है, यह मुझे स्वप्नमें भी विचार न था।

रावण—खर, यह तुम कह रहे हो !

खर—दुख होता है ! सोचते होगे कि इसे छुड़ानेके लिए मैंने इतना साहस किया, इतनी दूरीसे चलकर आया, और युद्धमें हजारों वीरोंका रक्त बहाकर वसुन्धरा माताको प्रसन्न करके विजय प्राप्त की। इसे मेरी अभ्यर्थना करनी चाहिए थी, जिसके स्थानमें यह फटका-रके शब्द सुन रहा हूँ। परन्तु, क्या यही विचार इन महानुभावके हृदयमें न उठ रहे होंगे ? मेरा कथन तीखा है, परन्तु सच्चा है। मगर

आपका व्यवहार सत्य और नर्मी दोनोंके पदसे गिरा हुआ है, इसलिए मेरा कहा स्वीकार करो और इस वीरके आगे गिड़गिड़ाकर क्षमाके लिए प्रार्थना करो ।

रावण—खर, तुम मेरे सच्चे हितैषी हो । संसारमें मीठा सत्य कहनेवालोंकी कमी नहीं, कमी उनकी है जो कड़ुवा सच कहनेमें भी नहीं हिचकिचाते । पवन, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ । इस समयके कटु वचनोंके लिए मुझे क्षमा करो ।

पवन—नहीं राजन्, नहीं, आप मेरे सम्मानके पात्र हैं । परन्तु यौवन अवस्थाके गरम रुधिरके जोशमें मेरे मुखसे अनुचित वचन निकल गये हैं, उनके लिए मुझे शोक है । छोटा जानकर क्षमा कर दीजिए ।

रावण—तुम जितने वीर हो उतने ही नेक और उदार भी हो। आओ, इस पलकी शत्रुताको विस्मृतिके घोर अन्धकारके प्रवाहमें विसर्जन कर दो और पहलेकी तरह फिरसे वही पवन बन जाओ ।

पवन—राजन्, मेरा हृदय आपकी ओरसे बिल्कुल शुद्ध है ।

रावण—सिपाहियो, तलवारें म्यानमें करो और बाहर चले जाओ। (सिपाहियोंका प्रस्थान) पवन, मैं तुम्हारी प्रतिज्ञाके अनुसार न केवल वरुण और उसके पुत्र पुण्डरीकको क्षमा करता हूँ प्रत्युत, उसका राज्य भी लौटाये देता हूँ ।

पवन—राजन्, इस समय तक उसका सर आपके आगे झुका हुआ था, आपके इस व्यवहारसे अब उसका हृदय आपकी मुट्ठीमें हो जायगा ।

सातवाँ दृश्य

स्थान—आदित्यपुरके राजमहलका बाहरी भाग

समय—आधी रात

(ललिता और विद्युत्प्रभ)

ललिता—क्या कहते हो ? अञ्जना बच गई ?

विद्युत्प्रभ—हाँ, बच गई ।

ललिता—मैं उसे खुली मृत्युके मार्गपर डाल आई थी, यह असम्भव है ।

विद्युत्प्रभ—मैंने उसे अपनी आँखोंसे देखा है, इसलिए यह सत्य है ।

ललिता—तुम्हें धोखा हुआ है ।

विद्युत्प्रभ—मैं धोखा खानेवाले दिन उत्पन्न नहीं हुआ ।

ललिता—तो सारा प्रयत्न निष्फल गया, वर्षोंका परिश्रम मिट्टीमें मिला ।

विद्युत्प्रभ—साहस करो, धैर्य्य धरो और सफलताके साधनोंका प्रयोग करनेके लिए तैय्यारियाँ करो ।

ललिता—सफलताकी सुन्दर भूमि मेरे आगेसे खिसक गई ह, मुझे कुछ दिखाई नहीं देता ।

विद्युत्०—साहस करो, तो सब कुछ हो जायगा ।

ललिता—वह अब मुझमें नहीं रहा । मेरा प्रारब्ध खोटा है ।

विद्युत्प्रभ—यह तुम्हारी भूल है । प्रत्येक मनुष्यका प्रारब्ध उसके अधीन है ।

ललिता—परमात्मा मुझे रास्ता दे ।

विद्युत्०—परमात्मा उनकी और केवल उनकी सहायता करते हैं, जो अपनी सहायताके लिए अपने हाथ-पैर हिलाते हैं, और जो हृदय हार देते हैं, साहस छोड़ देते हैं, उनके लिए अपमानका जीवन और मृत्यु दोनों भुजायें फैला देते हैं।

ललिता—प्रतीकार! प्रतीकार! मैं प्रतीकार चाहती हूँ।

विद्युत्प्रभ—अर्थात्?

ललिता—अञ्जनाकी मृत्यु।

विद्युत्प्रभ—वह परसों प्रातःकालके सूर्य्यकी प्रथम किरणसे पहले हो सकती है। परन्तु—

ललिता—कहो, बोलो, मैं निराशा और क्रोधसे पागल हो जाऊँगी।

विद्युत्प्रभ—तुम्हें हाथ हिलाने होंगे।

ललिता—मैं सब कुछ करूँगी।

विद्युत्प्रभ—(तलवार निकालकर) यह तलवार है?

ललिता—हाँ।

विद्युत्प्रभ—और इसकी धार तेज है?

ललिता—सो भी है।

विद्युत्प्रभ—उसने तुम्हारा जीवन अन्धकारमय बनाया है?

ललिता—ठीक।

विद्युत्प्रभ—तुम उसका निवास-स्थान जानती हो?

ललिता—नहीं।

विद्युत्०—झूठ बोल रही हो। वही कुटिया—

ललिता—जानती हूँ।

विद्युत्प्रभ—(तलवार देखकर) थोड़ी-सी हृदयकी कठोरता और हाथकी एक हरकत, बस ।

ललिता—नहीं नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा, मैं स्त्री हूँ ।

विद्युत्प्रभ—फिर, यह विचार छोड़ दो ।

ललिता—तुम ?

विद्युत्प्रभ—मैं पुरुष हूँ और पुरुष स्त्रीपर आक्रमण करे, इससे अधिक नीच कर्म त्रिलोकमें कोई नहीं । मैं पापी हूँ, कुकर्मी हूँ, काले हृदयवाला हूँ, परन्तु स्त्रीपर हाथ उठाऊँ, यह असम्भव है । अञ्जनाने तुम्हें हानि पहुँचाई है, उससे तुम समझो । पवनने मेरा शिकार छीना है, उससे मैं बदला लूँगा ।

ललिता—तो मैं तैय्यार हूँ ।

विद्युत्प्रभ—समय बीत रहा है, रात्रि जा रही है । चिड़ियोंके जागनेसे पहले अपने अपने कामपर रवाना हो जाओ ।

ललिता—और तुम ?

विद्युत्प्रभ—यह फिर पूछना । समय बीत रहा है ।

[ललिताका प्रस्थान]

विद्युत्प्रभ—निद्रा और मृत्युका मेल निराला खेल होगा जो आज पशुमुखा वनमें अभिनीत होनेवाला है। परन्तु उन्मादिनी, क्या तू समझती है कि मेरी केवल अञ्जना और पवनके रक्तपातसे संतुष्टि हो जायगी ? ओह नहीं, मेरा तिरस्कार करनेमें तूने भी कमी नहीं की। इस लिए अञ्जनाका जीवन समाप्त करके अपने लिए भी तैय्यार रह । अस्तु । ललिता अञ्जनाकी ओर गई है, मैं पवनके लिए कुचक्र रचूँ।

(प्रस्थान)

[गुप्त स्थानसे चम्पा निकलती है ।]

चम्पा—कुचक्र रचो और अपनी सहायताके लिए संसार भरके पतित नराधम इकट्ठे कर लो, परन्तु स्मरण रक्खो कि निर्दोषका एक बाल भी बाँका न हो सकेगा । जो जगदाधार सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदिको नियमानुसार चलाता है और उनको संक्रमणकी आज्ञा नहीं देता, वही सब कुछ देखनेवाला, सब कुछ सुननेवाला और सब कुछ जाननेवाला दयालु न्यायकारी प्रभु उन निर्दोषोंकी रक्षाके लिए अपना हाथ बढ़ायगा, और उसका पापियोंका सिर कुचलनेवाला डण्डा इन पिशाचोंके कुचक्रको छिन्न-भिन्न कर देगा,—परन्तु इस समय क्या कुछ मेरा भी कर्तव्य नहीं है ? यह अग्नि प्रचण्ड करनेमें क्या मैंने ललिताकी सहायता नहीं की, और क्या इसका प्रायश्चित करनेके लिए मेरा अन्तःकरण मुझे जोर जोरसे प्रेरणा नहीं कर रहा है ? बहुत देरके बाद आज यहाँ आई थी कि महारानी केतुमतीके चरणोंमें सिर रखकर अपना पाप स्वीकार कर लूँगी । परन्तु, इस स्वीकृतिका क्या फल होगा यदि ललिताने उसकी हत्या कर दी ?—परन्तु नहीं, यह नहीं हो सकता । मैं जाऊँगी और अञ्जनाके लिए अपने प्राण निछावर कर दूँगी । जो अग्नि प्रचण्ड की है, उसे बुझाऊँगी । जो पाप कर चुकी हूँ, उसका प्रायश्चित्त करूँगी और अपने पापसे भरे हुए जीवनपर कर्त्तव्यकी मृत्युकी मोहर लगाऊँगी । कल रातके तारोंके साथ मैं अंधकारमें लीन हो जाऊँगी, और फिर अपना काला मुँह संसारके सम्मुख न करूँगी । तारे फिर निकलेंगे, बिजली फिर चमकेगी, परन्तु चम्पाका जीता जागता शरीर आकाशके नीचे और पृथ्वीके ऊपर कभी दिखाई न देगा ।

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थानः—आदित्यपुरका राजमहल

समय—दोपहर

[दास दासियाँ धूपमें बैठे बातचीत कर रहे हैं ।]

पहला—मेरा कहा सच निकला ।

दूसरा—क्या ?

पहला—अञ्जना निर्दोष थी ।

दूसरा—निर्दोष थी ?

तीसरा—हाँ निर्दोष थी ।

चौथा—कैसे पता लगा ?

पहला—स्वयं राजकुमार कह रहे हैं ।

दूसरा—मैंने अपने कानोंसे सुना है ।

तीसरा—तो अब महारानीका क्या हाल है ?

पहला—रो रही हैं ।

चौथा—और राजकुमार ?

पहला—मिट्टीकी मूर्ति बने बैठे हैं ।

तीसरा—तो राजकुमारी अंजनाका दुःख कट गया ?

चौथा—वह तो कभीका कट चुका है ।

पाँचवाँ—क्या मतलब ?

चौथा—जिस दिन उनको यहाँसे निकाला गया था, उन्होंने उसी दिन अपमानके कारण आत्म-हत्या कर ली थी ।

पहला—यह ग़लत है। असलमें बात यह है कि वे अपने देश गई थीं और वहाँ उनके पिताने उन्हें मरवा डाला।

दूसरा—वाह यार, तुम तो बड़ी बेपरकी उड़ाते हो।

पहला—क्यों, क्या झूठ है ?

दूसरा—नहीं तो क्या सच है ?

तीसरा—अञ्जना देवी हैं, परमात्माने उनके काले दिनोंको बिता दिया है।

दूसरा—परन्तु, अब वह हैं कहाँ ?

तीसरा—क्यों ? महेन्द्रपुरमें होंगीं।

दूसरा—उनकी मृत्यु हुए आठ मास बीत चुके।

तीसरा—मृत्यु हो चुकी ?

दूसरा—हाँ, हो चुकी।

तीसरा—कैसे ?

दूसरा—प्रसूतिके ज्वरसे।

तीसरा—शोक ! यदि वे आज जीवित होतीं !

चौथा—दुनिया भी क्या स्थान है, जिसमें पुण्यात्माको इतने संकट सहने पड़ते हैं ! तनिक विचार करो, हम लोग गरीब हैं फिर भी इन दुःख-भरी बातोंपर आँखोंसे आँसू छलक पड़ते हैं। तो, उसका क्या हाल हुआ होगा जो राज करती थी, महलोंमें रहती थी, फूलोंपर सोती थी। काले वस्त्र पहनकर उसका हृदय क्या कहता होगा ?

पाँचवाँ—और नेक थी।

पहला—और पतिव्रता थी।

दूसरा—और परित्यक्ता थी।

तीसरा—और सहनशीला थी।

पहला—पर इस सारी कलहका मूल ललिता है।

पाँचवाँ—उसीने महारानीको बहका दिया था।

पहला—वास्तवमें यह आग उसीने लगाई थी।

दूसरा—परन्तु क्यों?

तीसरा—यह कौन जान सकता है, दिलकी बात जानना आसान नहीं।

चौथा—वह आ रही है।

पाँचवाँ—डायन चुड़ैल।

पहला—पिशाचिनी कलमुँही।

दूसरा—झूठी फ़िसादन।

तीसरा—दुष्ट कूबरी।

चौथा—जरा, आ लेने दो।

[ललिताका प्रवेश]

पहला—क्यों री, यह आग तूने कैसे लगा दी थी?

ललिता—आग?

तीसरा—अँगूठीको तूने ही कहा था कि नकली है?

ललिता—नकली है?

चौथा—जिसने कहा था कि मैंने राजकुमारको नहीं देखा और राजकुमारी अञ्जना झूठ कह रही है, वह चम्पा तेरी ही सखी थी?

ललिता—मेरी सखी?

पाँचवाँ—महारानीको तूने सूचना दी थी कि अञ्जना भागनेकी तैय्यारियाँ कर रही है?

ललिता—भागनेकी तैय्यारियाँ ?

पहला—क्या आश्चर्यजनक उत्तर देती है !

दूसरा—मानो कुछ जानती ही नहीं ।

तीसरा—और इस मामलेमें इसका हाथ ही नहीं !

चौथा—ऐसी स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी ।

ललिता—परन्तु तुम्हारा प्रयोजन क्या है ?

पाँचवाँ—प्रयोजन यही—

पहला—कुटिला—

दूसरा—(लात मारकर) तुम्हारा यह—

पहला—(लकड़ी मारकर) पुरस्कार है ।

ललिता—भाइयो—

तीसरा—(मारकर) बस चुप रहो ।

ललिता—भाइयो—

तीसरा—(मारकर) बस चुप रहो ।

ललिता—मैं—

चौथा—चुप ।

ललिता—देखो ।

पाँचवाँ—हम तुम्हारा बकवाद नहीं सुनेंगे ।

(सब मारते हैं, ललिता दुहाई देती है । राजकुमारको आते देखकर दास एक तरफ और ललिता दूसरी तरफ चली जाती है ।)

[राजकुमार धीरे धीरे प्रवेश करते हैं ।]

पवन—वह क्या कहती होगी ? दुनिया ऐसा अन्याय कर सकती है, स्त्रीका हृदय ऐसा पत्थर बन सकता है, राजा इस प्रकार अपनी रानीके वशमें हो सकता है, और मनुष्य ऐसा भयानक धोखा खा सकता है, इसकी उसे आशा न होगी । मेरे घरसे निकल गई, निकाली गई । जब उसे काले वस्त्र पहिनाये गये होंगे, जब लोग

उसपर अँगुलियाँ उठाते होंगे, उस समय उसके कोमल हृदयमें भाले चुभते होंगे। परन्तु यह सब मेरा दोष है, इसका उत्तरदायित्व मेरे ही कन्धोंपर है।

[प्रहसितका प्रवेश]

प्रहसित—राजकुमार—

पवन—जिस बातका खटका था वह हो गई।

प्रह०—(घबराकर) क्या अब वे संसारमें नहीं हैं ? क्या उनकी मृत्यु हो गई ?

पवन—वह मृत्युको अधिक पसंद करती।

प्रह०—तो अभी जीती हैं ?

पवन—यह नहीं कह सकता।

प्रहसित—राजकुमार !

पवन—आश्चर्य न करो, मैं सब बात सुना देता हूँ। मैं जब युद्ध-भूमिमें जाते समय मिलनेके लिए आया था और उसके पास गुप्त रीतिसे तीन दिन रहा था, तब मुझे उसने अनुरोध किया था कि माता-पितासे मिलते जाइए। मैने इसे स्वीकार न किया, परन्तु तुम्हारे कथनानुसार अपनी अँगूठी उसके सुपुर्द कर आया। माता-पितासे न मिलनेका कारण यह था कि वे कहीं न समझ लें कि मैं युद्धसे डरकर भाग आया हूँ।

प्रहसित—फिर ?

पवन—उसपर दुराचारका संदेह किया गया, वह घबरा गई। पहले तो जबानी कहा कि पवन आया था, परन्तु जब माताजीने स्वीकार न किया तो मेरी दी हुई अँगूठी दिखाई। परन्तु माताजीने इसपर भी

विश्वास न किया और उसे पातकी रथमें बैठाकर रत्नपुरसे बाहर निकाल दिया।

प्रह०—राजकुमार!

पवन—कहो, बोलो, बताओ, मैं क्या करूँ। यह सब मेरा दोष है। यदि मैं उसकी बातपर ध्यान देता, उसका कहना स्वीकार कर लेता तो यहाँ तक नौबत न आती। प्रथम बारह बरस तक उसको अकेले महलमें फैंक दिया। वह धोये हुए फूलके समान निर्मल थी, परन्तु उसे कसूरवार समझा और अब जब उसे आशाकी किरण दिखाई दी, तो माताने भविष्यकी सुन्दर आशाके पुष्पोंको निर्दयतासे मसल डाला, यह मेरा दोष है। सोचा था युद्धसे यश प्राप्त करके जा रहा हूँ, अञ्जनाके हर्ष और आनन्दकी सीमा न होगी। परन्तु मनुष्य कुछ सोचता है और दैव कुछ और ही कर डालता है। मेरा सुख-स्वप्न टूट गया, हृदयमें मानों किसीने भाला उतार दिया। कहो, अब मैं क्या करूँ। मुझे कुछ दिखाई नहीं देता।

प्रह०—राजकुमार, अधीर न होओ। संसारमें अनेक आपत्तियाँ आती हैं, उनको सहना ही वीरत्व है।

पवन—क्षत्रियका बालक न आपत्तियोंसे डरता हैं, न दुःखोंसे घबराता है। परन्तु यह वज्रपात, यह घोर वेदना असह्य है। वह क्या कहती होगी, जब दुनियाकी घृणित दृष्टि उसके स्वच्छ मुखपर पड़ती होगी। जब उसपर झूठा दोष लगाया जाता होगा, जब उस निर्दोषीको ताने दिये जाते होंगे, उस समय उसका क्या हाल होता होगा। ओः! मेरा हृदय दुःखसे फट जायगा, मैं इस विषयपर विचार तक करनेमें असमर्थ हूँ।

प्रह०—धैर्य्य धरो राजकुमार, धैर्य्य धरो। जो हो चुका है उसका वापस लौटना असम्भव है। तुम हाथ मल रहे हो, समय बीत रहा है और उसके बचावकी संभावना प्रतिक्षण कम हो रही है। इस लिए मेरी सम्मति है कि—

पवन—कहो कहो, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। मेरी बुद्धि इस समय काम नहीं करती, वह अंधकारमें है। तुम उसे प्रकाशमें चलनेमें सहायता दो।

प्रह०—वे अब कहाँ होंगीं ?

पवन—कहाँ होगीं ?

प्रह०—महेन्द्रपुरमें।

पवन—ठीक है, महेन्द्रपुरमें। ससुरालसे दुतकारी हुई अबला सिवा माताके पास जानेके और कहाँ जा सकती है ? तो अब हमें महेन्द्रपुर चलना चाहिए।

प्रह०—परमात्मा इस सरल हृदय राजकुमारको धैर्य्य दे।
(दोनोंका प्रस्थान)

[ललिताका प्रवेश]

ललिता—कितने वर्षके बाद आज उसके मुखपर उदासीकी झलक दिखाई दी है, उसकी आँखें अंजनाके लिए कैसी व्याकुल हो रही हैं, मानों संसारमें उसके सिवा और कोई मनोहर वस्तु ही नहीं है। परन्तु उसे क्या पता है कि वह उस लोकमें पहुँच चुकी है, जहाँसे लौटना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है। अभागिनी राजकुमारी, तू दुनियामें रोती हुई आई, रोते हुए ही संसारसे प्रस्थान कर गई। परन्तु यह मेरा नहीं, तेरा ही दोष है। तू मेरे मार्गका पत्थर, आँखोंमें खटकनेवाला तिनका क्यों बनी थी ? तूने मेरी आधी बाल्यावस्था और जवानीकी

पाली हुई आशाओंके पौधेको क्यों उखाड़ फेंका था ? अ ह ह हः (हँसती है) अब मेरा रास्ता साफ है। राजकुमार कहता था, सुखदा तेरे और मेरे बीचमें अग्निका समुद्र गर्ज रहा है, इस लिए मुझे विस्मृतिके जलमें विसर्जन कर दो। परन्तु अब वह समुद्र कहाँ है ? मेरे तपस्याके दिन कट चुके, अब वर-प्राप्तिका समय आया है। हृदय ! साहस कर और अपने प्रियतमके पीछे पीछे चल; वह निराश होगा, उसे धैर्य्य दे और अपना-आप उसपर प्रकट कर। क्या यह सुनकर कि मैं तेरह वर्ष उसके नामकी माला जपती रही हूँ, और उसके लिए राजकुमारी होकर दासीका वेष धारण किये रही हूँ, उसपर असर न होगा, और उसका हृदय मोमकी नाईं न पिघल जायगा ? वायु ! तुम साक्षी हो, मैं प्रेमकी पापिनी हूँ। मैंने विवश होकर यह कुकर्म किया है। (प्रस्थान)

[केतुमतीका प्रवेश]

केतुमती—विधाता ! मैंने क्या कर दिया ! पुष्पकी नाईं पवित्र और इन्द्रधनुषकी नाईं सुंदर बहूपर ऐसा दोषारोपण ! मेरा भला कौन जुगमें होगा ! आज उसकी आँखोंके आँसू मुझे याद आ रहे हैं। उसकी सिसकियाँ मुझे सुनाई दे रही हैं।

[दो दासियोंका प्रवेश]

एक दासी—महारानी, राजकुमार प्रहसितको साथ लेकर महेन्द्र-पुर चले गये हैं, और कह गये हैं कि अगर अञ्जना न मिली तो मैं आत्म-हत्या कर लूँगा और वापस न लौटूँगा।

केतुमती—दयामय ! मेरा पुत्र तेरे सुपुर्द है, तू ही उसकी रक्षा कर। (दूसरी दासीसे) तूने ललिताको मेरे पास आनेके लिए कहा, वह अभी तक क्यों नहीं आई ?

दूसरी सखी—महारानी, उसकी चारों ओर खोज की गई, परन्तु कोई पता नहीं चला।

केतुमती—(क्रोधसे) तो भाग गई, निकल गई? नहीं नहीं, मैं यह सहन नहीं कर सकती। जाओ, आदित्यपुरके सारे दरवाजोंपर पहरेदार बैठा दो, और ढिंढोरा पिटवा दो कि कोई व्यक्ति नगरसे बाहर न निकल सके। मैं उसको अपने सम्मुख बुलाऊँगी; उससे पूछूँगी, उससे उत्तर माँगूँगी और मामलेकी तह तक पहुँचनेका यत्न करूँगी।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—महात्मा अश्वपतिकी कुटियाका बाहरी भाग

समय—तीसरा प्रहर

[वसन्तमाला गा रही है]

सारंग

किसीसों प्रीति करे नहिं कोय।
जो बिन जाने नेह लगावत, वाकी दुरगति होय॥ कि०
करके प्रीति सलभ दीपकसों, फिर पीछे पछताय।
दीप प्रीतिकी रीति न जाने, सलभहिं देत जराय॥ कि०
प्रीति कमलसों भ्रमर करत है, बैठत वापै जाय।
साँझ समय हा दैव! कमल-सँग, अपनो प्राण गँवाय॥ कि०
प्रीति करत बीना-स्वरसों मृग, सुनि मूर्च्छित हो जाय।
फँसकर हाय फंदमें मृग निज जीवन देत नसाय॥ कि०
प्रीति जगतकी झूठी सारी, मूरख मन भरमाय।
सो जन जान सुजान सुदर्शन, जो हरिमें ध्यान लगाय।
किसीसों प्रीति करे नहिं कोय॥

[अञ्जनाका प्रवेश]

अञ्जना—क्यों बहन, क्या गा रही हो ?

वसंत०—प्रेमके देवताकी आराधना कर रही हूँ।

अञ्जना—गालियाँ देनेका नाम तुमने आराधना रक्खा है !

वसंत०—दुनियाँ प्रेमका स्थान नहीं, यहाँ पग-पगपर झूठके जाल बिछे हुए हैं।

अञ्जना—वसंतमाला !

वसंत०—राजकुमारी !

अञ्जना—प्रेमको गालियाँ न दो, यह तुम्हारी भूल है। दुनिया उदास थी, स्त्री उत्पन्न की गई। स्त्री बेकार थी, उसे सुन्दरता दी गई। परन्तु चारों ओर अँधेरा था, आँखें उस सुंदरताको देखनेके योग्य न थीं, तब विधाताने स्त्रीका हृदय लेकर उसपर प्रेमका जादू कर दिया। दुनियामें उजाला हो गया। वसंतमाला !

वसंतमाला—राजकुमारी !

अञ्जना—प्रेमको गालियाँ न दो ! यह वह मधु है, जिसको तुम्हारे होठोंने अभी तक नहीं छुआ। यह वह वस्तु है जिसका मनोहर दृश्य तुम्हारे हृदयने अभी तक अनुभव नहीं किया। तुम अबोध हो, प्रेमको गालियाँ न दो।

वसंतमाला—गालियाँ न दूँ, स्तुति करूँ ? आराधना करूँ ? क्या वह प्रेम—जिसने कई देशोंका सर्वस्व नाश कर दिया है, जिसने रुधिरकी नदियाँ बहा दी हैं, जिसने लाखों फूलके समान निर्मल हृदयोंको पापसे कलुषित कर दिया है, जिसने लाखों सुंदर व्यक्तियोंको मिट्टीमें मिला कर दुनियाकी दृष्टिमें अति दीन अति हीन और अति क्षीण बना दिया

है—आराधनाके योग्य है ? नहीं नहीं राजकुमारी, नहीं, प्रेम कोई उत्तम वस्तु नहीं, केवल एक भयानक परन्तु मनोरंजक धोखा है जिससे दुनियाके पुरुष भोली भाली स्त्रियोंको लूटकर उनको पैरोंके नीचे मसल डालते हैं।

अञ्जना—क्या कह रही हो ? तुम्हारे विचार बहुत भयानक ह।

वसन्तमाला—परन्तु प्रेमसे अधिक भयानक नहीं। अपनी अवस्थापर विचार करो, तुम क्या थीं और अब क्या बन गई हो ? तुम्हारी आँखोंकी ज्योति, तुम्हारे कपोलोंकी मनोहरता, तुम्हारे होठोंकी मुस्कराहट, तुम्हारे शरीरकी गदराहट, तुम्हारे रंगकी सुन्दरता अब कहाँ है ? इन सबका चोर, इन सबका डाकू वही प्रेम है जिसकी तुम स्तुति और मैं निन्दा करते नहीं थकती।

अञ्जना—कामदेवको फूलोंके तीर चला देने दो, फिर पूछूँगी। क्यों बजरंगी ? (बजरंगीका हँसना)

[महात्मा अश्वपतिका प्रवेश]

अश्वपति—(जन्मपत्रिका देखते हुए) दसवें घरमें चन्द्रमा और चौथेमें बृहस्पति है। दूसरेमें मंगल और पहलेमें रवि है। क्या मतलब ?

वसन्तमाला—महाराज, क्या देखा ?

अश्वपति—ठहरो, मुझे सोचने दो (अँगुलियोंपर गिनते हैं) अञ्जना !

अञ्जना—महाराज !

अश्वपति—बेटी, तुम्हारे दुःखोंसे हृदय फट जाता है, परन्तु इस बालककी जन्म-कुंडली देखकर तुम्हारे सारे दुःख भूल गये हैं। यह बालक शेरोंसे लड़ेगा, शास्त्रोंका विद्वान् होगा। सम्बन्धियोंका प्यारा, माता-पिताकी आँखोंका तारा होगा। यश इसके चरण चूमेगा। इतिहास-

लेखक इसकी जीवन-घटनाओंकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करेंगे और संसार इसके नामपर श्रद्धा और प्रेमके फूल चढ़ायगा ।

अञ्जना—किसी सम्बन्धीके लिए बुरा तो नहीं है ?

अश्वपति—(फिर हिसाब करते हैं) नहीं, बहुत मंगलकारी बालक है । देवी, मैंने कई जन्म-कुंडलियाँ देखी हैं, परन्तु ऐसी कुंडली देखनेका आजतक अवसर नहीं मिला । बड़ा भाग्यवान् बालक है । इससे केवल माता-पिता और कुलका ही नहीं; भारतवर्षका नाम भी उज्ज्वल होगा और इसकी कीर्तिसे चारों ओर सुगन्धि फैलेगी । (प्रस्थान)

वसन्तमाला—(अञ्जनासे बालकको लेकर) बजरंगी ! ओ बजरंगी ! जरा हँस दे । बेटा, देख तेरे माताकी आँखोंसे आज प्रसन्नता बरस रही है, रोकना चाहती है परन्तु होठ बसमें नहीं आते और मुस्कराहट जबर्दस्ती बाहर निकल रही है ।—ऐसा मालूम होता है कि कोई इस ओर आ रहा है, देखूँ कौन है ?

(बालकको अंजनाको गोदमें देकर आप चली जाती है ।)

अञ्जना—मेरी उजड़ी हुई दुनियाके मनोहर फूल ! मेरे अन्धकारमय जीवनके प्रकाश ! निर्बल अबलाके एक मात्र सहारे ! तुझे देखकर मुझे अपने सारे संकट भूल जाते हैं, और जिस प्रकार रोता हुआ बालक खिलौना देखकर प्रसन्न हो जाता है, उसी तरह तेरा मुखड़ा देखकर मेरा हृदय आनन्दसे नाचने लगता है । तेरी आँखोंमें उन्हींकी ज्योति है, तेरे कपोलोंमें उन्हींका आकर्षण है । सोचती थी, परित्यक्ता होकर क्यों जी रही हूँ, परन्तु तेरे मुखड़ेको देखकर जो उनकी आकृतिका सूक्ष्म चित्र है, अब यह बात समझमें आ रही है कि इस निर्जन वनमें संसारसे पृथक् रहकर भी उनके पुत्रका लालन-पालन करके मैं उन्हींकी सेवा कर रही हूँ और उसी धर्मको पाल रही

हूँ, जिसपर चलनेकी ऋषियोंने और शास्त्रोंने आज्ञा दी है, और जिससे च्युत होकर नारी-जन्म निष्फल हो जाता है। (बालक रोने लगता है।) क्यों बेटा, रोने क्यों लगा? तेरी अभागी माँ तेरे पास बैठी तेरे मुखड़ेको देख रही है। तू क्यों रोता है? (छातीसे लगाकर प्यार करती है।) आकाशपर मेघ छा जानेके कारण अन्धकार फैल गया है। परन्तु थोड़ी देरके बाद फिर वही सूर्य्य चमकने लगेगा। रातके बाद दिन चढ़ता है, सोई हुई प्रकृति जागती है। वृक्षोंके गिरे हुए बीज भूमिसे फूटकर बाहर निकलते हैं, काली रातें चाँदनी हो जाती हैं, परन्तु मेरे प्रारब्धमें कोई परिवर्तन नहीं होता। कब तक विधाता—कब तक ये जीवनकी नैय्या मँझधारमें हिचकोरे खाती रहेगी?—ये कौन आ रहे हैं?

[वसन्तमालाके साथ राजा प्रतिसूर्य और रानी रविसुन्दरीका प्रवेश]

अञ्जना—प्रणाम करती हूँ।

दोनों आगन्तुक—सौभाग्यवती हो, पुत्री।

वसन्तमाला—ये विमानमें उड़े जा रहे थे, विश्राम करनेको कुछ देरके लिए यहाँ उतरे हैं।

अञ्जना—अहोभाग्य। वसन्तमाला, इनको ले जाओ और इस वनमें जो कुछ प्राप्त है, उससे इनका आतिथ्य करो।

प्रतिसूर्य—देवी तू कौन है, जो इस वनमें जंगलके फूलकी नाईं जीवन गुजार रही है?

रविसुन्दरी—और क्या कारण है कि तेरे वस्त्र काले हैं?

अञ्जना—(स्वगत) परमात्मा! इस प्रकारके प्रश्न सुनकर मेरा हृदय फट जाता है और आँखें हठात् नीचे झुक जाती हैं।

वसन्तमाला—यह एक दुखिया राजकुमारी है। आप कुटियाके अन्दर चलकर फल-फूल ग्रहण करें, मैं इनका परिचय स्वयं निवेदन कर दूँगी।

प्रतिसूर्य्य—यह राजकुमारी है ?

वसन्तमाला—हाँ महाराज, राजकुमारी है।

प्रतिसूर्य्य—और परित्यक्ता है ?

वसन्तमाला—हाँ महाराज, परित्यक्ता है।

अञ्जना—ये कौन हैं जिनकी आवाज़में माधुर्य्यका सोता फूट रहा है।

रविसुन्दरी—बेटी, तू अञ्जना तो नहीं है ?

प्रतिसूर्य्य—वही है, मेरी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं, यह वही है।

रविसुन्दरी—अञ्जना ! अञ्जना ! !

अञ्जना—कौन, मामा ! मुझे सँभालो, मेरा हृदय डूबा जा रहा है।

(राजा प्रतिसूर्य्यकी गोदमें गिर पड़ती है।)

रविसुन्दरी—(वसन्तमालासे) दौड़ो, जल लाओ। लड़की बेहोश हो गई है।

(वसन्तमालाका जल लेने जाना।)

प्रतिसूर्य्य—बेटी ! अञ्जना ! आँख खोल, देख यह मैं हूँ।

रविसुन्दरी—बेटी ! होश कर, उठ, तुझे क्या हो गया है ?

(वसन्तमालाका ज़लके छींटे देना)

अञ्जना—(आखें खोलकर) वसन्त !

वसन्तमाला—क्यों राजकुमारी, होश करो।

अञ्जना—क्या यह स्वप्न है या सचमुच मेरी आँखोंने अपने मामाको देखा है—मुझे विश्वास नहीं आता।

रविसुन्दरी—दुःख उठा-उठाकर पागल हो गई है और आशाके सुदिन सबेरेमें भी इसे निराशाकी अर्ध रात्रिका भ्रम हो रहा है।

प्रतिसूर्य्य—बेटी, तुम स्वप्न नहीं देखतीं—वास्तवमें तुम्हारे दुःखोंकी समाप्ति हो गई है।

अञ्जना—इससे पहले भी मैं धोखा खा चुकी हूँ। एक बार सोचा था कि दुःखके दिन बीत गये, परन्तु नहीं, अभी मेरे कुकर्मोंका फल पूर्ण न हुआ था। क्या इसी प्रकार फिर धोखा खाऊँगी?

रविसुन्दरी—नहीं मेरी पुत्री, नहीं, तू इतनी अकुलाई हुई और इतनी घबराई हुई क्यों है?

वसंत०—दुःखोंने इनके हृदयसे आशा और आनंद दोनोंको मेट दिया है। इनपर जो घोर आपत्तियाँ पड़ी हैं, उनका विचार करके मेरे शरीरपर रोमाञ्च हो आता है।

प्रतिसूर्य्य—परन्तु अब वे दिन न आयँगे।

अञ्जना—(रविसुन्दरीसे लिपटकर) विश्वास नहीं होता।

रविसुन्दरी—बेटी, इतनी क्यों व्याकुल हो रही हो! उठो चलो, हनुपुर चलें।

अञ्जना—नहीं, मैं नहीं जाती।

प्रतिसूर्य्य—पगली यह क्या कह रही है! इस निर्जन स्थानमें रहेगी और मेरे साथ नहीं जायगी?

अञ्जना—मामा!

प्रतिसूर्य्य—बेटी, हाँ कह तो, क्या कहना चाहती है? सहमी हुई हिरनीके समान तेरे नेत्रोंमें भयका चित्र नाच रहा है।

अञ्जना—अंधकार भयानक होता है, परन्तु जब थोड़ी देरके लिए उसमें बिजली चमक जाती है, तो वह अंधकार उससे कई गुना अधिक भयानक हो जाता है।

प्रतिसूर्य्य—इससे प्रयोजन ?

अञ्जना—प्रयोजन यह कि आप हनुपुर चलकर मुझसे मेरा वृत्तान्त पूछेंगे, और तब जितना प्यार इस समय मेरे प्रति प्रकट कर रहे हैं, इससे कई गुनी अधिक घृणा करने लगेंगे—अंधकार कई गुना अधिक भयानक हो जायगा।

प्रतिसूर्य्य—तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुमसे कोई अनुरोध न करूँगा।

अञ्जना—कोई नहीं ?

प्रतिसूर्य्य—कोई नहीं।

अञ्जना—(रविसुन्दरीसे) और आप ?

रविसुन्दरी—मैं भी इस विषयमें तुम्हारा दुखा हुआ हृदय न दुखाऊँगी और तुमसे कोई प्रश्न न करूँगी।

प्रतिसूर्य्य—अब तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं ?

अञ्जना—नहीं।

प्रतिसूर्य्य—(वसन्तमालासे) देवी !

वसन्तमाला—महाराज !

प्रतिसूर्य्य—जाकर महात्माजीसे प्रार्थना करो कि एक आदमी आपसे भेंट करना चाहता है।

वसन्तमाला—परन्तु आपने इसके विषयमें अभी तक कुछ नहीं पूछा ? (बालकको दिखाती है।)

प्रतिसूर्य्य—यह बालक कौन ?

रविसुंदरी—क्या अंजनाका पुत्र है ?

वसंतमाला—जी हाँ ।

प्रतिसूर्य्य—आ बेटा आ, तेरे लिए आँखें तड़प रहीं थीं ।

(गोदमें लेकर प्यार करता है । वसंतमाला जाती है ।)

रविसुन्दरी—कैसा सुन्दर बालक है, देखकर हृदय शीतल होता है ।

प्रतिसूर्य्य—इसके शरीरमें हमारा अपना रुधिर हमारे चित्तको अपनी ओर आकर्षित कर रहा है । (बालकका मुँह चूमता है ।)

रविसुन्दरी—इसके नेत्रोंसे मालूम होता है बड़ा भाग्यवान् होगा और इसके यश और कीर्तिकी छटासे भारत-भूमिमें प्रकाश फैलेगा ।

[वसन्तमालाका प्रवेश]

वसन्तमाला—चलिए, महात्माजी आपसे भेंट करनेको तैय्यार हैं । आपका आगमन सुनकर उनके हर्षकी सीमा नहीं रही है । (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—महेन्द्रपुरका राजमहल

समय—सायंकाल

[प्रहसित और पवन]

पवन—कुछ पता नहीं चलता ।

प्रह०—राजकुमार धैर्य धरो, अभी मालूम हो जायगा ।

पवन—सब आये परन्तु उसके सम्बन्धमें किसी आदमीने कोई बात नहीं कही ।

प्रह०—परमात्मा दया करेंगे ।

पवन—उसका कमरा बंद पड़ा है, मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है । ऐसा प्रतीत होता हैं मानों वह इस भवनमें नहीं है । यदि होती

तो यह असम्भव था कि मेरा आगमन सुनती और दौड़ी हुई न आती। यहाँ न हुई तो—

[एक बालकका प्रवेश]

प्रह०—मैं इस बालकको पहचानता हूँ, कदाचित् इससे कुछ पता मिल जाय। बालक!

बालक—(प्रणाम करके) पलनाम कलता हूँ महालाज।

प्रह०—आयुष्मान् भव! तुम्हारा नाम क्या है?

बालक—मेला नाम तीच्छन कुम्हाल।

प्रह०—तीक्ष्णकुमार?

बालक—हाँ तीच्छन कुम्हाल।

प्रह०—तुम बहुत अच्छे बालक हो।

बालक—हाँ।

प्रह०—तो एक बात बतलाओगे?

बालक—बतलाऊँगा।

प्रह०—तुम अपनी भूआको जानते हो?

बालक—जानता हूँ।

प्रह०—वह कहा है?

बालक—तली गई।

पवन—कहाँ चली गई?

बालक—एक दिन आई थी फिल तली गई।

पवन—प्रारब्ध! मुझे धोखा न देना, मेरा हृदय पहले ही दुखा हुआ है।

बालक—वह बड़ी लोती थी, बड़ी लोती थी, फिल दादाजीने घलसे निकाल दिया। फिल वह तली गई।

प्रह०—कहाँ चली गई ?

बालक—पछुमुखाको तली गई।

पवन—शोक ! मेरे लिए यहाँ भी निराशा ही उपस्थित है।

बालक—उसके कपले काले थे, दादीजी भी लोती थीं, पर दादाजीको किलोध चल्हा था।

पवन—मित्र, मेरा संसार अँधेरा हो गया है, उसमें आशाकी किरण दिखाई नहीं देती। बोलो, कहो, अब कौन-सा रास्ता बाकी है ?

प्रह०—पिता भी ऐसा निर्दयी, ऐसा मोह-हीन हो सकता है, यह न सोचा था। परन्तु जब प्रारब्ध फिरने लगती है तो माता-पिताके हृदयोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। उस समय संसारकी प्रत्येक वस्तु बदल जाती है। फूल काँटा हो जाता है, सोना पीतल बन जाता है और प्रेमका सोता अन्याय और क्रोधका रूप धारण कर लेता है।

पवन—पतिने परित्याग किया, रोती रही। सास-ससुरने दोष लगाया, आश्रयके लिए माता-पिताके पास आई। परन्तु माता-पिताका तिरस्कार और अपमान उसके लिए असह्य हो गया होगा। मैं उसके पास केवल थोड़ी देर—केवल तीन दिन रहा हूँ। परन्तु मैंने उसका हृदय पढ़ लिया था, वह प्रेमकी पुतली थी। प्रेम उसके जीवनकी आत्मा थी। अपने माता-पिताके हाथों अपमान सहकर उसका कोमल हृदय टूट गया होगा। परन्तु यह सब मेरा—

[पवनका मूर्च्छित हो जाना। राजा महेन्द्रराय और रानी हृदयसुन्दरीका प्रवेश]

महेन्द्रराय—पवन !

प्रह०—गुलाब-जल लाओ, इन्हें मूर्च्छा आ गई है।

हृदयसुन्दरी—(घबराकर) दास !

[दासका प्रवेश]

दौड़ो, गुलाबदानी लाओ, पवन बेहोश पड़े हैं।

(दासका प्रस्थान)

[हृदयसुन्दरी पंखा पकड़कर हवा करने लगती है। पवन खड़ा हो जाता है।]

पवन—ठहरो! पंखा न करो, इसकी हवामें विषके परमाणु मिले हुए हैं। मुझपर गुलाब-जल न छिड़को; तुम्हारे संयोगसे वह अग्निकी भयानक जिह्वाका रूप धारण कर लेगा। परमात्माने तुम्हें माता पिता बनाया, फूलके समान सुन्दर और ओसके कणकी नाईं पवित्र सन्तान दी, परन्तु तुम्हारी कठोरता और निर्दयताने दिखा दिया कि परमात्माकी दया जहाँ चाहती है मिट्टीके ढेलेकी तरह गिर पड़ती है, और सुपात्र-कुपात्रका जरा भी विचार नहीं करती।

प्रह०—राजकुमार, आप क्या कह रहे हैं?

पवन—पराई बेटीपर दूषण आरोपण किया जा सकता है, यह सहल है। परन्तु तुम्हारी तो वह पुत्री थी, तुम्हारे हृदयने यह कैसे स्वीकार कर लिया कि उसे धक्के मारकर बाहर निकाल दो, और निर्दोष अबलाको तिरस्कारके जीवन और निराशाकी मौतके मुँहमें धकेल दो। तुम राजा हो, औरोंका न्याय करते हो, मगर वह ढोंग अब नहीं रह सकता। जो आदमी अपनी निर्दोष बेटीको नहीं पहचान सकता, वह दूसरोंका न्याय किस प्रकार कर सकता है?

प्रह०—क्रोध और निराशाने आपको—

पवन—परन्तु मैं वनोंको छानूँगा, बियाबानोंमें ढूँढूँगा, पर्वतोंपर खोजूँगा, और जिस स्थानपर भी होगा उस नारी-रत्नको प्राप्त करके रहूँगा, और भरसक यत्न करनेपर भी यदि उसका पता न लगा तो प्रायश्चित्त रूपमें जलती हुई चितापर जल मरूँगा। (वेगसे प्रस्थान)

प्रह०—राजकुमार, ठहरो मैं भी आता हूँ ।

(प्रहसितका जानेको उद्यत होना, महाराज महेन्द्ररायका रोकना ।)

महेन्द्रराय—ठहरो, एक शब्द—

प्रह०—आज्ञा ।

महेन्द्रराय—क्या अञ्जना निर्दोष थी ?

प्रह०—पूर्णतया ।

महेन्द्र०—और आदित्यपुरसे आया हुआ पत्र ?

प्रह०—इस बातका प्रमाण है कि बुद्धिमानसे बुद्धिमान् पुरुष भी धोखा खा सकता है । (वेगसे प्रस्थान)

महेन्द्रराय—परमात्मा ! परमात्मा ! यह मैंने क्या कर दिया, इस पापका बदला किस जन्ममें मिलेगा !

हृदयसुन्दरी—मेरी पुत्री ! तू क्या कहती होगी !

महेन्द्र०—मुझे सँभालो, मेरी आँखोंके आगे अँधेरा छा रहा है ।

(अचेत हो जाना । हृदय-सुन्दरीका गुलाब-जल छिड़कना)

हृदयसुन्दरी—दास ! दास ! इधर आओ, महाराज मूर्च्छित हो गये हैं ।

चौथा दृश्य

स्थान—रास्ता

समय—चाँदनी रात

(विद्युत्प्रभ अकेला)

विद्युत्प्रभ—चाँद, तू हँस रहा है । तूने धीरे धीरे अपने शत्रुके साम्राज्यपर विजय प्राप्ति की है । आज तेरा प्रकाश चारों ओर नृत्य कर रहा है । अन्धकार तंग मकानोंमें कैद है, और तेरा मुख-कमल विजय-प्राप्तिके आनन्दसे खिला हुआ है । तू हँस रहा है, परन्तु मेरा हृदय

धड़क रहा है। वह सोचता है, क्या आज मेरी मनोकामना भी सिद्ध होगी? जिस कामके लिए अपनी सारी जवानीका एक एक क्षण समर्पण कर चुका हूँ, जिसकी पूर्तिके लिए माता, पिता, भाई, बंधु, सबको बिसार रक्खा है, राज-काजके सुखोंसे वंचित हो रहा हूँ, भूतोंके समान रातोंको बाहर घूमता फिरा हूँ—क्या वह काम आज भी पूरा न होगा? विद्युत्प्रभ! प्रसन्न हो, तेरी कीर्तिका कलंक, तेरे यशका शत्रु बिना कुछ जाने मृत्युकी ओर बढ़ रहा है, और तेरी मनोकामना पूरी होनेकी घड़ी समीप सरक रही है। चाँद, जरा ठहर, चिड़ियाको जालमें फँस लेने दे, फिर विद्युत्प्रभ तेरे साथ इस आनन्द और प्रसन्नताके नृत्यमें सम्मिलित होगा—कौन?

[सेवकका प्रवेश]

विद्यु०—तुम आ गये?

सेवक—भगवन्! मैं सेवामें उपस्थित हूँ।

विद्युत्प्रभ—तुम अपना काम समझते हो?

सेवक—पूरी तरहसे।

विद्युत्प्रभ—कोई समाचार?

सेवक—वह आ रहा है।

विद्युत्प्रभ—और उसका मित्र?

सेवक—उससे बिछुड़ चुका है।

विद्युत्प्रभ—तुम्हारे आदमी?

सेवक—अपने अपने स्थानपर नियत कर दिये गये हैं।

विद्युत्प्रभ—तो उसकी प्रारब्धपर मोहर लग चुकी है। उसने दो बार प्रेमके भूखेके मुँहसे ग्रास छीना है। उसने वर्षों तक मुझे घृणा और ईर्षा-द्वेषकी अग्निमें जलाया है। जब मलिन मुख, झुके हुए सिर,

और क्षमाप्रार्थिनी आँखोंके साथ वह मेरे सम्मुख आवेगा, तो मेरा हृदय प्रफुल्लित हो जायगा। सावधान! कोई भूल न हो जाय।

सेवक—यह असंभव है।

विद्युत्प्रभ—आओ, मैं तुम्हें एक बात समझा दूँ। पवन आ रहा है, पता नहीं उसके साथ और कौन है। परन्तु कोई भी हो, देखा जायगा।

(दोनोंका प्रस्थान)

[पवन और सुखदाका प्रवेश]

पवन—देवी, बहुत दिनोंके बाद तुम्हें देखनेका अवसर मिला है।

सुखदा—परन्तु मेरी आँखोंने तुम्हें कभी ओझल नहीं होने दिया। मैं तुम्हें बराबर देखती रही हूँ।

पवन—तुम मुझे बराबर देखती रही हो, यह कैसे?

सुखदा—स्त्रीके लिए कोई बात कठिन नहीं। वह जो चाहती है कर सकती है, और जो चाहती है करा सकती है, केवल उसके हृदयमें किसी बातके आनेकी देर है। अब कहो, मुझसे अंतिम भेटमें तुमने जो शब्द कहे थे वे तुम्हें याद हैं?

पवन—कौन-से शब्द?

सुखदा—'मेरे और तुम्हारे मध्य अग्निका समुद्र गर्ज रहा है। इस लिए मुझे विस्मृतिके जलमें विसर्जन कर दो। मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता, क्यों कि मेरे हृदयपर एक अन्य रमणीका अधिकार जम चुका है, मैं उसके प्रेमको धोखा न दूँगा।'

पवन—हाँ, ये शब्द मैंने कहे थे। परन्तु इनसे प्रयोजन?

सुखदा—अब वह अग्नि सर्द और समुद्र शुष्क हो चुका है। इस लिए—

पवन—सुखदा! सुखदा! यह असम्भव है। मैं भारतवर्षके

कोने-कोनेमें उसकी खोज करूँगा, और जैसे भी होगा और जिस प्रकार भी होगा उसको ढूँढ़ निकालूँगा।

सुखदा—और यदि वह फिर भी न मिले तो ?

पवन—जिस प्रकार पवित्रताकी देवियाँ पति-वियोगमें चितामें जल मरती हैं, उसी प्रकार उस प्रेमकी पुतलीके लिए मैं आत्म-हत्या कर लूँगा, और उसपर जो अत्याचार हुआ है उसका प्रायश्चित्त करूँगा।

सुखदा—यह कदापि नहीं हो सकता, मैं तुम्हें कभी इसकी आज्ञा न दूँगी।

पवन—तुम आज्ञा न दोगी ? तुम्हारा मुझपर क्या अधिकार है ?

सुखदा—मेरा तुमपर अधिकार है, मैंने तुम्हारे लिए अपना राज-पाट छोड़ा है। तुम्हारे लिए अपने आरामपर, अपने सम्मानपर, अपने वंशपर लात मारी है। तुम्हारे लिए अपना स्वास्थ्य, अपना यौवन, अपना भविष्य नष्ट किया है। तुम्हारे लिए अपने माता-पिताकी अप्रसन्नता सही है। तुम्हारे लिए तेरह वर्ष तुम्हारी माताकी दासी बनकर कमीनोंके समान सेवाका भार अपने सिरपर लिया है। मेरा तुमपर अधिकार है, तुम मेरे हो—चकित न होओ, इस राज-कुमारीके कोमल हाथोंने तुम्हारे लिए शूद्रोंका तुच्छ काम किया है। इस राज्य करनेवाली जिह्वाने तुम्हारे लिए झिड़कियाँ खाई हैं। मैं राजकुमारी थी, तुम्हारे लिए एक दासी बनी। मैं सुखदा थी, तुम्हारे लिए ललिता बनी।

पवन—तुम ही ललिता थीं ? तो यह घृणायुक्त आग तुम्हारे ही हाथोंकी लगाई हुई है ? तुम्हींने मुझपर स्वत्व जमानेके लिए यह प्रपंच रचा ? तुम्हींने उस अबलापर दोषारोपण कराया ? तुम्हींने मेरी माताको धोखा दिया ? ओह ! कितना अधम यत्न है ! परन्तु फिर भी

सुखदा, यह तेरह वर्षका तप, यह थका देनेवाला परिश्रम, मेरे मनमें तुम्हारे लिए सम्मानका भाव उत्पन्न करता है; और मेरे हृदयमें तुम्हारे लिए प्रेमका संचार करता है। परन्तु क्या करूँ, वाग्धर्मके सूत्रोंसे बँधा हुआ हूँ। तुमने जो कुछ किया है वह मेरे लिए प्राण-घातक भी हो, तो भी मुझे तुमपर क्रोध नहीं, क्योंकि तुमने जो कुछ किया है प्रेम और क्रोधकी दशामें आकर किया है। परन्तु यह आशा हृदयसे हटा दो कि अञ्जनाके बाद पवन किसी औरसे भी प्यार करेगा। सच्चा भक्त ईश्वरके सिवा किसी औरकी आराधना नहीं कर सकता। चकोर चन्द्रमाके सिवा किसी औरपर मुग्ध नहीं हो सकता, और सच्चा क्षत्रिय एक स्त्रीके सिवा किसी दूसरीसे प्रेम नहीं कर सकता। वह जब प्रेम करता है, पूर्ण शक्तिसे करता है और जब उस प्रेमसे वञ्चित हो जाता है, तो श्मशानके समान उदासीन होकर जीवनकी घड़ियाँ केवल उसकी यादमें व्यतीत कर देता है।

सुखदा—तो मेरे स्वप्नकी व्याख्या निराशा है?

पवन—जरा विचार करो। जिस स्त्रीने परित्यक्ता होकर बारह वर्ष एकान्तमें काट डाले और फिर भी अपनी जिह्वासे क्रोधके दो शब्द नहीं निकाले, जिसके दो दिनके सहवासका परिणाम यह हुआ कि मुझे युद्धमें ऐसा अनुभव होता रहा मानो उसका प्रेम मेरे चारों ओर फैलकर मेरी रक्षा कर रहा है, उसके मधुर शब्द मुझे उत्तेजना दे रहे हैं, जिसके मिलनकी आशामें मैं सकल दुःख भूल गया था, क्या यह सम्भव है कि मैं अपने हृदय-मंदिरमेंसे उसकी दिव्य मूर्तिको निकालकर वहाँ किसी अन्य मूर्तिको स्थान दे सकूँ, चाहे वह स्वयं इन्द्रलोककी अप्सरा ही क्यों न हो?—नहीं नहीं, सुखदा राजकुमारी, यह असम्भव है। उसने मुझपर अपने प्राण निछावर किये हैं, मैं उसके लिए अपनी जान गवाँ दूगाँ, और आनेवाली आर्य्य-सन्तानको

यह कहनेका अवसर न दूँगा कि आर्य्यावर्तकी स्त्रियाँ तो प्रेमपर सर्वस्व न्योछावर कर सकती हैं; परन्तु पुरुषोंके हृदय इस स्वर्गीय वस्तुसे शून्य हैं। मेरा हृदय इसे स्वीकार नहीं कर सकता। उसकी आँखें मेरे विना संसारके सकल पुरुषोंकी ओरसे बन्द हैं, मैं दिखाऊँगा कि पवनकी आँखोंने भी अञ्जनाके विना किसी अन्य रमणीके सौन्दर्य्यकी पूजा नहीं की। सुखदा, सौन्दर्य दोपहरकी धूप है। यह चढ़ती है और ढल जाती है। यौवन पानीका बुलबुला है, वह उठता है और बैठ जाता है। संसार असार है, यह बनता है और बिगड़ जाता है। केवल धर्म है जो बारह महीने एक-सा बना रहता है, और जिसके विना संसारकी गति रुक जाती है। इस लिए इस विषय-वासनाका विचार छोड़ दो और धर्मका खयाल करो। इसीके रास्तेपर अञ्जना दुःख उठा रही है। इसीके लिए मैं पागल हुआ फिर रहा हूँ। और इसीकी खोजमें तुम अपना जीवन समर्पण कर दो। परमात्मा भला करेगा। (वेगसे प्रस्थान)

सुखदा—हाय ! यह उसने क्या कहा ? यह कि सौन्दर्य्य दोपहरकी धूप है, वह चढ़ती है और ढल जाती है। संसार असार है, यह बनता है और बिगड़ जाता है। क्या मैं इस समय तक घोर अन्धकारमें ही टक्करें खा रही थी ? क्या मेरी बुद्धि इस समय तक रोचक धोखे दे देकर मुझे विनाशके मार्गपर ही धकेल रही थी ? (सोचती है) हाँ मैं मूर्खा हूँ, नहीं अन्धी हूँ, इतना ही क्यों, राक्षसी हूँ। मैंने एक पवित्र गृहस्थको बरबाद करनेकी कुचेष्टा की है। मैंने घोर पाप किया है। मेरी आँखें अब तक क्यों बन्द थीं ? मेरे कान अब तक क्यों बहरे थे ? ओः परमात्मा ! मैं क्या देख रही हूँ ! (सुखदाका छिप जाना)

[पवनको पकड़े हुए विद्युत्प्रभके सेवकोंका प्रवेश ।]

पवन—तुमने मुझे पकड़नेमें भूल तो नहीं की ?

एक सेवक—नहीं ।

पवन—क्या तुम बता सकते हो कि दोष क्या है ?

सेवक—नहीं !

पवन—क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

सेवक—नहीं ।

[विद्युत्प्रभका प्रवेश]

विद्युत्प्रभ—मैं बता सकता हूँ । तुम्हारा मुँह क्यों सूख गया है, मुझसे पूछो ।

पवन—तुमसे ?

विद्युत्प्रभ—जी हाँ, मैं ही विद्युत्प्रभ हूँ, पहिचान लिया ?

पवन—हाँ पहिचान लिया और साथ ही सब कुछ जान लिया ।

विद्युत्प्रभ—क्या जान लिया ?

पवन—जो मैं कहना नहीं चाहता ।

विद्युत्प्रभ—फिर भी कुछ ?

पवन—क्षत्रियका बेटा इतना नीच इतना पापी हो सकता है, यह न सोचा था ।

विद्युत्प्रभ—नीच ? मैंने क्या नीचता की है ?

पवन—तुमने वह नीचता की है जो आर्य्यावर्तके पवित्र नामपर कलंक है । तुमने वह नीचता की है जो धर्मपर धब्बा है, जो विवाहकी स्वाधीनतापर आक्षेप है ।

विद्युत्प्रभ—जिस समय मेरे मुँहसे दो दो ग्रास छीने थे, उस समय ये उपदेश किस नींदमें सोये हुए थे ? जिस समय तुमने एक क्षत्रिय वीरके सम्मानपर धावा किया था, उस समय ये विचार कहाँ छिपे हुए थे ?

पवन—विद्युत्प्रभ, मेरी जबान न खुलवाओ, लज्जासे भूमिमें गड़ जाओगे। आर्य्यावर्तकी रमणियाँ जिसे वीर पाती हैं, उसे पसन्द करती हैं। यदि तुममें बल और पुरुषार्थ होता तो एक स्त्रीके लिए इतने दिनों धक्के न खाते फिरते, भारतकी स्त्रियाँ तुमपर निछावर होनेमें गौरव समझतीं। यदि लज्जा होती तो कहीं डूब मरते।

विद्युत्प्रभ—अदूरदर्शी! मृत्यु तेरे सिरपर खेल रही है, परन्तु जिह्वा अभी तक बराबर चल रही है। क्या तू नहीं जानता कि तेरे प्राण इस समय मेरे हाथोंमें हैं और चाहूँ तो एक क्षणमें तेरी समाप्ति कर दूँ? इस स्थानपर तेरा सहायक कौन है?

पवन—वह जिसने संसारमें मुझे सम्मान और तुझे अपमान प्रदान किया है।

विद्युत्प्रभ—अर्थात्—

पवन—जगदाधार परमेश्वर—जिसके आज्ञाके विना रेतका एक कण भी अपने स्थानसे नहीं हिल सकता।

विद्युत्प्रभ—वह तेरी सहायता करेगा?

पवन—यदि मैंने किसी पूर्व जन्ममें कुकर्म नहीं किये हैं तो अवश्य करेगा।

विद्युत्प्रभ—अकड़नेसे काम नहीं चल सकता। यदि जीवन प्यारा है, तो मेरे चरणोंमें सिर रख और हाथ जोड़कर क्षमाकी भीखके लिए याचना कर, मैं तुझपर कुछ दया कर दूँगा।

पवन—क्षत्रियका पुत्र इस दिनके लिए उत्पन्न नहीं होता, मुझसे यह आशा न रक्खो।

विद्युत्प्रभ—तो तुम मरनेको तैय्यार हो?

पवन—हाँ, क्षमा-याचनाकी अपेक्षा मरना अधिक सहल है।

विद्युत्प्रभ—(सेवकोंसे) ले जाओ, रातको मेरे महलमें क़ैद रक्खो। सवेरे इसकी प्रारब्धका अन्तिम निश्चय किया जायगा।

पवन—(जंजीरोंको क्रोधसे मरोड़ते हुए) कमीने! भीरु!

विद्युत्प्रभ—ले जाओ, विद्युत्प्रभ अब इसे देखना नहीं चाहता। आज इसकी बेबसी काफी है, कल मृत्युका दृश्य देखूँगा।

(एक तरफ विद्युत्प्रभका, दूसरी तरफसे सेवकोंका और पवनका प्रस्थान)

सुखदा—वे ही दोनों वर हैं जिनमेंसे एक मेरे लिए माता-पिताने और दूसरा मैंने अपने आप पसंद किया था। मालूम हो गया कि मेरी निर्णय-शक्तिने भूल न की थी। एक कैसा भद्र, कैसा नेक और कैसा पवित्र है, दूसरा कितना अत्याचारी, कितना अन्यायी, कितना नीच है। परन्तु क्या मैं इसके योग्य थी? नहीं, पवनके सहवासके लिए अञ्जना जैसी स्त्री ही यथेष्ट थी ताकि सूर्य और चन्द्रमाकी जोड़ी बन सकती। अञ्जनाको मैंने मार दिया, पवनको बचाऊँगी। कदाचित् अञ्जना आज जीवित होती तो देखती कि सुखदा उसके पतिके बचावके लिए कैसी भयानक अवस्थामें पड़नेको तैय्यार है। परन्तु यह मेरे पापका उचित प्रायश्चित्त होगा। इस पवित्र-हृदय वीरके मार्गमें मैंने ही काँटे बिछाये, मैं ही इसके लिए अपना बलिदान दूँगी। विद्युत्प्रभकी क्रोधाग्निको मैंने भड़काया था, मैं ही उसमें स्वाहा दूँगी और अपने इस जन्मके पापका फल इसी जन्ममें भोगकर अगले लोकमें पवित्र हृदय और पवित्र बुद्धिके साथ जन्म लूँगी। (सुखदाका प्रस्थान)

(विद्युत्प्रभका प्रवेश)

विद्युत्प्रभ—(चन्द्रमाकी ओर देखकर) चाँद, तू हँस रहा है!

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—हनुपुरका राजमहल।

समय—संध्या

[वसन्तमाला अञ्जनाके बालकको थपक थपक कर सुलाती है। अञ्जना पवनकी यादमें गा रही है।]

श्याम कल्याण

जरि जरि भसम भई यह छाती।
कासें। अपनी पीर बखानहुँ, जिया जरत दिन-राती। जरि०॥
तुम बिन कष्ट सहे बहु प्रीतम, तबहुँ न पठई पाती।
प्राण पखेरू उड़न चहत हैं, नींद इन्हें नहिं आती॥ जरि०॥
तुम बिन सब फीको लागत है, जिमि चातककी जाती।
तज करि सब सरिता-सागर-जल, पीवत बूँद सवाती॥
जरि जरि भसम भई यह छाती।

वसन्तमाला—राजकुमारी, क्यों रो-रोकर आँखें नष्ट कर रही हो? अपने शरीर और यौवनपर दया करो और जीवनके चार दिन आरामसे व्यतीत करो।

अञ्जना—आराम! आराम कहाँ है? उसकी मैंने बहुत खोज की, उसके लिए बहुत प्रयत्न किये परन्तु उसका पद-चिह्न तक दिखाई नहीं दिया। तुम कहती हो अपने शरीर और यौवनपर दया करो, उनके बनाये रखनेका उपाय सोचो। परन्तु मैं चाहती हूँ कि यदि विधाता मुझसे स्वास्थ्य, सुंदरता और सब कुछ वापस लौटाकर केवल उन्हें मुझे दे दे, तो मैं जीवनके प्रकाशको हृदयमें धारण करके अपने नारी-जन्मको सफल समझूँ। वसन्तमाला, उनके बिना मुझे संसार अन्धकार प्रतीत होता है। क्या इस निराशाकी रात्रिका सबेरा नहीं होगा?

वसन्तमाला—होगा राजकुमारी, अवश्यमेव होगा।

अञ्जना—कब होगा? उसके लिए मैं अपना सर्वस्व लुटानेको उद्यत हूँ। क्या अभी तक राजकुमार रण-भूमिसे वापस न लौटे होंगे?

वसन्तमाला—मेरा विचार है कि तुम्हारी प्रारब्धके परिवर्तनमें अब अधिक देर नहीं, क्योंकि महाराजने महेन्द्रपुरको आदमी भेज दिये हैं।

अञ्जना—और वहाँसे अभी तक कोई उत्तर नहीं आया?

वसन्तमाला—अभी तक तो नहीं आया, पर शीघ्र आ जानेकी आशा है।

अञ्जना—(रोकर) परमात्मा! मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती, केवल उनकी पद-सेवाका सौभाग्य चाहती हूँ।

वसन्तमाला—वह दिन कब आवेगा, जब मेरी प्यासी आँखें इस पवित्रताकी देवीको हँसते हुए देखेंगी, इसके शरीरका एक एक परमाणु प्रेमके रंगमें रंगा हुआ है और आत्मा स्वर्गीय प्रकृतिसे अलंकृत है।

[रविसुन्दरीका प्रवेश]

रविसुन्दरी—अञ्जना!

अञ्जना—(आँसू पोंछती है और चुप रहती है।)

रविसुन्दरी—बावली, क्यों रो रही है? आँसुओंको पोंछ दे। संकटका समय बीत चुका है।

अञ्जना—(खड़ी होकर) क्या—

रवि०—तुम्हारे माता-पिता आ गये हैं, और तुम्हारे लिए व्याकुल हो रहे हैं।

अञ्जना—कहाँ हैं? किधर हैं? मुझे उनके पास ले चलो। यह शुभ समाचार सुननेके लिए मेरे कान पागल हो रहे हैं।

रवि०—मूर्खा न बनो, आँसू पोंछ लो और उनके पास प्रसन्न-मुख होकर चलो। तुम्हारे नेत्रोंमें अश्रु-कण और मुखपर उदासीनताकी झलक देखकर उनके घावोंपर नमक छिड़का जायगा। उन्होंने तुम्हारे साथ जो अन्याय किया है, तुम्हारे सत्यपर जो अविश्वास किया है और उसके कारण तुम्हें जो कष्ट पहुँचा है, यह सब उन्हें स्मरण है, और उनमें साहस नहीं कि इस विषयपर मुँह खोल सकें; परन्तु तुम्हें रोते हुए देखकर उनकी दशा अकथनीय हो जायगी।

वसन्तमाला—परमात्मा ! तुझे शतशः धन्यवाद है कि तूने इस अबलाके रुदनपर भी ध्यान दिया।

अञ्जना—नहीं मामी, नहीं, यह असंभव है। दुःखके आँसू रोके जा सकते हैं, परन्तु आनन्दके आँसू नहीं रुक सकते। मुझे उनके पास ले चलो। एक बार पिताकी छातीपर सिर रखकर रो लूँ। एक बार माताके गले लगकर दिलकी भड़ास निकाल लूँ, इस समय मेरी यही इच्छा है।

[रानी हृदयसुन्दरीका प्रवेश]

हृदय०—रविसुन्दरी, बतलाओ मेरी अञ्जना कहाँ है ?

अञ्जना—(गलेसे चिमटकर) माँ !

हृदय०—बेटी ! बेटी ! ! मेरा दोष क्षमा कर।

अञ्जना—मा ! तुमने कौन-सा दोष किया है ? इस समय आँसू न बहाओ, मुँहपर दुखके चिह्न न लाओ। मुझे आनन्दका समय मिला है, तनिक हँस लेने दो। (हँसती है और साथ ही रोती है।)

हृदय०—बस बेटी, बस। दुखके दिन बीत चुके हैं, अब किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। अब सुखका समय तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा

है। परन्तु देखो, मेरा हृदय लज्जा और घृणासे सकुचा जा रहा है। मुझे क्षमा कर दो, मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है।

अञ्जना—नहीं माताजी, नहीं, यह आपकी भूल है। माता-पिता अपनी संतानके साथ कभी अन्याय नहीं कर सकते। यह आपका दोष नहीं था, मेरी प्रारब्धका फेर था, मेरे पूर्व जन्मके कुकर्मोंका फल था।

[राजा महेन्द्ररायका प्रवेश]

महेन्द्रराय—बेटी !

अञ्जना—(दौड़कर आगे बढ़ती है और गलेसे चिमट जाती है।) पिताजी, आखिर आपको अपनी अभागी पुत्रीका विचार आया।

महेन्द्रराय—नहीं बेटी, नहीं, तू अभागी नहीं वरन् हमारे सम्मान और आदरकी पात्र है। हम तेरे लिए यहाँ नहीं आये, अपने पापके धब्बेको धोने आये हैं।

हृदय०—कितनी दुबली हो गई है। आँखोंमें वह कान्ति नहीं, मुँहपर वह लाली नहीं, शरीरमें वह चंचलता नहीं। हँसी, आनन्द, प्रसन्नता नहीं। यह सब हमारा दोष है।

महेन्द्रराय—यह स्वर्ण थी, मैंने इसे पीतल समझा। यह कुसुम थी मैंने इसे काँटा समझा। यह पवित्रता और धर्मकी जीती मूर्ति थी, परन्तु मेरी आँखें अंधी हो गई। इसने बहुत कुछ कहा, परन्तु मैंने कुछ न सुना। यह रोई, मैंने दुतकार दिया। इसने मिन्नतें कीं, मैंने कान बंद कर लिये, आँखें फेर लीं। यह सब मेरा दोष है। बेटी अञ्जना, तुम्हारी माताने तुम्हारे लिए बहुत कुछ कहा, कई दिन भूखी प्यासी रोती रही, परन्तु मेरी बुद्धिपर पर्दा पड़ा हुआ था। मुझे तुमपर विश्वास न

हुआ। तुम्हारी सासके पत्रने उसे पाषाण बना दिया था। जब पवनने कहा कि तुमने पिता होकर भी पिताका काम न किया, उस समय मुझपर वज्रपात हुआ और मेरी आँखें खुल गईं।

अञ्जना—अब यह कुछ न कहो। मैं महेन्द्रपुरके लिए तरस रही हूँ, मुझे वहाँ ले चलो। मेरा सारा दु.ख दूर हो जायगा।

रविसुन्दरी—तो तुम्हें यहाँ बहुत दुःख है ?

अञ्जना—यहाँ दुःख है, यह कैसे कह सकती हूँ। जिस समय सास ससुरने दुतकार दिया था, माता-पिताने घरमें आश्रय देनेसे इनकार कर दिया था, जंगलमें पड़ी एकान्तका जीवन व्यतीत कर रही थी, जब घृणा मुझपर हँसती थी और दुःख मेरे लिए आँसू बहाता था, ऐसे कुसमयमें आपने ही मुझे प्रेमके शब्दोंसे संबोधन किया और मिट्टीसे उठाकर मस्तकपर चढ़ा लिया। आपने ही मेरी निराशाको आशामें परिवर्तन किया, और मृत्युके मुँहमें जाती हुईको जीवनके क्षेत्रमें लौटा लिया। यहाँ मुझे स्वर्गीय आनन्द प्राप्त हुआ, यहाँ मेरे हृदयके घावोंपर मरहम लगी, यहाँ मेरी काली रातपर आशाका चन्द्र उदय हुआ, यहाँ मुझे माता-पिताके दर्शन हुए। यह स्थान मेरे लिए तीर्थराज है, स्वर्गसे बढ़कर है। परन्तु फिर भी मामी, स्त्रियोंके लिए मातृ-गृह आकर्षणका स्रोत है, प्रेमका समुंदर है। उसकी तुलना इन्द्रपुरी भी नहीं कर सकती।

रविसुन्दरी—धन्य हो देवी, धन्य हो। तुमने अपने योग्य बात की है।

महेन्द्रराय—एक एक शब्द प्रेम-रसमें डूबा हुआ है। यह कितनी महान् आत्मा है, और मैं कितना नीच, कितना नराधम हूँ। बेटी,

मुझे तुमपर गौरव है। तुम्हारे नाम लेनेसे मेरी जिह्वा पवित्र होती है। परन्तु तुमको मेरी पुत्री होनेके कारण ही संसारके सम्मुख सिर नीचा करना पड़ा है। संसारमें पुत्र पिताके कारण और स्त्री पतिके कारण मान पाती है। परन्तु तुम वह पुत्री और वह पत्नी हो, जिसके कारण तुम्हारे पिता और पतिका नाम भारतवर्षमें उज्ज्वल होगा—परन्तु मैंने जो भूल, जो कठोरता, तुम्हारे साथ की है, उसके लिए आजीवन शोकातुर रहूँगा।

हृदय०—वसन्तमाला!

वसन्तमाला—महारानी!

हृदय०—तुम्हारे प्रति कृतज्ञताके जो भाव मेरे हृदयमें है, उनको प्रकट करना मनुष्य-शक्तिसे बाहर है। जब इसका पति युद्धमें था, सास-ससुरने त्याग दिया था, माता-पिताने भी बेपर्वाही की थी, उस समय तुमने इसका साथ छायाके समान दिया और इसे निराशासे बचाया। नहीं तो इसका बचना कठिन ही नहीं, किंतु असम्भव था।

वसन्तमाला—और यह मेरा सौभाग्य था कि मैं इसकी संगिनी बनी रही। इसने मुझे दिखला दिया है कि पतिव्रता स्त्रियाँ जगमें अपना जीवन किस तरह बिताया करती हैं। परन्तु इस समय इन बातोंको जाने दीजिए और अधिक आवश्यक और रोचक विषयकी ओर ध्यान दीजिए। देखिए, इसने आँखें खोल दी हैं। (बालक दिखाती है।)

हृदय०—कौन! अंजनाका पुत्र! आ बेटा, आ! इस दिनके लिए मेरी आँखें तरस रहीं थीं। (हनुमानको गोदीमें ले लेती है।)

महेन्द्रराय—लो हँस रहा है, समझता है मेरी नानी आई है।

वसन्त०—बजरंगी ! (चुटकी बजाकर) ओ बेटा बजरंगी ! जरा नानी और नाना दोनोंकी खबर लो। अरे रोने लग गये ! न रो बेटा, न रो। महारानी, दे दीजिए, यह हाथ पहिचानता है।

(हनुमानको हृदयसुन्दरी दे देती है।)

हृदय०—कैसा सुन्दर बालक है ! देखकर हृदय प्रफुल्लित हो उठता है, और आँखोंमें ज्योति जाग उठती है।

महेन्द्रराय—इस वनके फूलने राज-भवनमें आकर और भी शोभा पा ली है।

[राजा प्रतिसूर्य्यका वेगसे प्रवेश]

प्रतिसूर्य्य—तुमने कुछ सुना ?

सब—नहीं, क्या समाचार है ? आप घबराये हुए हैं।

प्रतिसूर्य्य—पवनका कोई पता नहीं मिलता।

महेन्द्रराय—तो घबरानेकी क्या बात है, मिल जायगा। वह कोई दूध-पीता बालक नहीं है कि उसके लिए चिन्ता की जाय।

प्रतिसूर्य्य—नहीं, उसने प्रतिज्ञा की है कि यदि अञ्जनाकी खोजमें सफलता न हुई, तो आत्महत्या कर लूँगा। इस लिए यह सुख-स्वप्न त्यागिए, इस सभाको विसर्जन कीजिए और जितनी जल्द हो सके पशुमुखा बनके चप्पे चप्पेको छान डालिए। मैंने इसी प्रयोजनसे, दो सौ आदमी भेज दिये हैं।

(अंजना चकित रह जाती है। हृदयसुन्दरी रो उठती है।)

हृदय०—दयामय, मेरी पुत्रीपर दया कर।

महेन्द्रराय—चिन्ता न करो और परमात्मापर भरोसा रक्खो। मैं इसी समय प्रस्थान करूँगा।

(वसन्तमाला और अंजनाके सिवा सबका प्रस्थान)

अञ्जना—आशाकी किरण मुझे बार बार धोखा दे रही है। क्या अभी कुछ कसर बाकी है, जो अब भी चैन न लेने दिया और इस आनन्दके समयमें फिर चिन्ता डाल दी? विधाता, अब अधिक दुःख सहनेकी शक्ति नहीं।

वसन्तमाला—धैर्य्य धरो राजकुमारी, धैर्य्य धरो!

अञ्जना—वसन्तमाला! मेरी सखि! मेरी बहिन! मेरे कानमें कोई कह रहा है कि वे इस समय विपत्तिमें हैं। उनपर संकट आया हुआ है। मेरी आत्मा शरीरमें फड़फड़ा रही है। ओः, इस अन्धकारके समय वे अँधेरेमें घबरा रहे होंगे, मुझे वहाँ जाना चाहिए।

वसन्तमाला—तुम प्रेमसे विह्वल हो रही हो, इसीसे यह सोचती हो परन्तु वास्तवमें भयका कोई कारण नहीं।

अञ्जना—वसन्तमाला!

वसन्तमाला—राजकुमारी! कहिए, मैं आज्ञा-पालनके लिए तैय्यार हूँ।

अञ्जना—बालकको सम्हालो, मैं वनमें जाऊँगी। मुझे समझानेका यत्न न करो, रोकनेका उपाय मत सोचो। तुमने मुझपर अनगिनत उपकार किये हैं। उनमें एककी और वृद्धि करो—मुझे इस समय जाने दो। मैं नहीं रह सकती, वे संकटमें हैं।

वसन्तमाला—और बालक—

अञ्जना—बालक तुम्हारे पास रह सकता है, तुम्हारे पास रहता आया है। अगर वे मिल गये, तो मैं आकर इसे ले लूँगी, नहीं तो तुम ही इसकी माताके स्थानपर हो। मुझे तुम्हारे सिवा और किसीका विश्वास नहीं। (बालकका मुख चूमती हुई है।) परमात्मा करे, मेरा यह प्यार अन्तिम न हो। लो अब जाऊँ।

वसन्तमाला—राजकुमारी!

अञ्जना—नहीं, कुछ न कहो, अनुरोध न करो, समय बीत रहा है और समस्या विषमतर हो रही है। मेरा जाना आवश्यक है।

(वेगसे प्रस्थान)

(हृदयसुन्दरीका प्रवेश।)

हृदय०—वसन्तमाला, अञ्जना कहाँ है ?

वसन्तमाला—वनको चली गई है, पुत्रका स्नेह भी उसे रोकनेमें असमर्थ रहा है।

हृदय०—विधाता ! यदि उसके प्रारब्धमें इतने हेर-फेर थे तो तूने उसके हृदयमें इतना प्रेम क्यों भरा—इसकी उसे क्या आवश्यकता थी ? सेनापतिको कहो, कुछ सिपाही उसके साथ कर दिये जावें।

(दोनोंका वेगसे प्रस्थान)

छठा दृश्य

स्थान—रत्नपुरका गुप्त बंदीगृह

समय—रात्रिका पिछला प्रहर

(पवन लेटा हुआ अपने आपसे बातें कर रहा है।)

पवन—धीरे धीरे मृत्युकी घड़ी समीपतर आ रही है, और मेरे जीवनकी अंतिम रात्रि समाप्त हो रही है। परन्तु क्या वास्तवमें मैं अपने जीवनकी एक मात्र अभिलाषाको पूर्ण न कर सकूँगा, और उसे,—जिसे मैने इतने संकटमें डाल रक्खा है, प्रेमके दो शब्द भी न कह सकूँगा ? नहीं, अब यह असंभव है। मेरे कुकर्मोंका कड़वा फल मेरे होठोंसे लगा दिया गया है। उसे चखे बिना निस्तार नहीं हो सकता। तो क्या पर्वा है, क्षत्रियका बालक मृत्युकी छायामें

उत्पन्न होता है, उसके साथ खेलता हुआ बड़ा होता है, और अंतमें उसीके साथ संग्राम करता हुआ संसारकी दृष्टिसे ओझल हो जाता है। यह कड़वा फल मधुर हो जाता, यह भयानक रात्रि शान्तिमय हो जाती, अगर एक बार अञ्जनाको देख सकता। (द्वार खुलनेका शब्द होता है।) क्या मृत्युका प्रभात हो गया? तो मुझे उसके लिए तैय्यार रहना चाहिए।

[सुखदाका प्रवेश]

पवन—कौन सुखदा! मेरी आँखें धोखा तो नहीं खा रही हैं! मैंने समझा था मौतके जमदूत आ गये।

सुखदा—मैंने आपके साथ अन्याय किया है, आपको दुःख दिया है, और आपकी कीर्तिको कलुषित किया है। इस समय मैं आपसे इतनी प्रार्थना करने आई हूँ—

पवन—क्या?

सुखदा—रात्रि अपने काले परोंके साथ सवेग उड़ी जा रही है, और ज्यों ज्यों दिनका उजाला प्रकट हो रहा है, तुम्हारी मृत्युका समय समीप आ रहा है।

पवन—यह मैं भली भाँति जानता हूँ। क्षत्रियका बालक मृत्युको खेल समझता है।

सुखदा—बहुत वर्ष हुए, मैंने तुमसे एक वस्तुकी याचना की थी। वह मुझे नहीं मिली। इस समय मैं फिरसे एक विनती करती हूँ, परमात्माके लिए उसे अस्वीकार न करो, मेरा हृदय टूट जायगा।

पवन—उस वस्तुके सिवा जो मैं देनेसे इनकार कर चुका हूँ, और जो कहो, करूँगा।

सुखदा—ये क्षत्रियके वचन हैं?

पवन—हाँ, क्षत्रियके वचन हैं।

सुखदा—जो मैं कहूँगी, उसे स्वीकार कर लोगे ?

पवन—हाँ हाँ।

सुखदा—तो मेरे वस्त्र पहिन लो और यहाँसे निकल जाओ।

पवन—यह क्या कहा ?

सुखदा—क्षत्रियके वचन पूरे हुआ करते हैं।

पवन—परन्तु वह भागा नहीं करता।

सुखदा—इस समय जीवन और मृत्युका प्रश्न है।

पवन—शूरवीरोंके लिए दोनों समान हैं।

सुखदा—तो तुम्हारे वचन झूठे होंगे, तुम प्रतिज्ञा-भंजक कहलाओगे ?

पवन—यह स्वीकार है, परन्तु यह स्वीकार नहीं कि एक स्त्रीको फँसाकर स्वयं प्राण बचा लूँ।

सुखदा—मैं स्वयं मरनेको तैय्यार हूँ।

पवन—परन्तु मैं इसके लिए तैय्यार नहीं।

सुखदा—पवन ! पवन ! परमात्माके लिए मेरी प्रार्थना अस्वीकार न करो। मैंने जो पाप किया है, उसके प्रायश्चित्तका यह अवसर मिला है। इसे मुझसे न छीनो, मैं बावली हो जाऊँगी।

पवन—सुखदा, यह असंभव है। मैं सौ बार मरनेकी और सौ बार उत्पन्न होनेकी यंत्रणा सहन कर सकता हूँ, परन्तु यह नहीं कर सकता कि एक स्त्रीको मृत्युके मुँहमें धकेलकर अपने जीवनको बचानेके लिए भाग जाऊँ ?

सुखदा—परन्तु तुम्हें धोखेसे फँसाया गया है।

पवन—इसलिए भाग तो सकता हूँ, परन्तु किसी स्त्रीकी अपने स्थानमें आहुति नहीं दे सकता।

सुखदा—तो मेरी प्रार्थना स्विकार नहीं होगी?

पवन—नहीं।

सुखदा—तुम यहाँसे भागकर प्राण नहीं बचाओगे?

पवन—नहीं, नहीं।

सुखदा—तो मुझे तुम्हारे सरपर चढ़कर आत्म-हत्या करनी पड़ेगी। (छुरी निकालकर अपने सीनेमें मारना चाहती है।)

पवन—ठहरो सुखदा, ठहरो, यह पाप मेरे सिर न चढ़ाओ।

सुखदा—बोलो, स्वीकार है या नहीं?

पवन—मुझे सोचने दो।

सुखदा—सोचनेका समय गया। अब एक शब्द ही बोलो,—हाँ या नहीं!

पवन—एक क्षण!

सुखदा—नहीं, बोलो, स्वीकार है या—

पवन—स्वीकार है सुखदा, इस बाजीमें तुम्हारी जीत रही।

सुखदा—लो, मेरे कपड़े पहनो और निकल जाओ।

(कपड़े बदलते हैं)

पवन—रात कितनी बाकी है?

सुखदा—पाँच छः घड़ी।

पवन—तो तुम्हें बचाया जा सकता है।

सुखदा—इसकी आवश्यकता नहीं।

पवन—परन्तु मेरा धर्म है। सुखदा मैंने तुम्हें आज तक न पहिचाना था, इस समय तुमने अपना आप मुझपर प्रकट कर दिया

है और दिखा दिया है कि स्त्रीका हृदय कितना उच्च, कितना महान् और कितना विशाल होता है।

सुखदा—परन्तु तुमने मुझे अभी तक नहीं पहिचाना।

पवन—अगर अञ्जना न होती, तो मैं परमात्मासे प्रार्थना करता कि वह मुझे तुम जैसा नारी-रत्न देकर कृतार्थ करे।

सुखदा—कैसे प्रेमपूर्ण शब्द हैं! मेरा जन्म आज सफल हुआ। परन्तु राजकुमार, तुमने मुझे अभी तक नहीं पहिचाना। यदि पहिचान लेते तो मुझसे घृणा करते।

पवन—नहीं, नहीं सुखदा, अब यह नहीं हो सकता। तुमने सहस्रों पाप किये हों; परन्तु मेरी आँखें उनपर नहीं उठ सकतीं। तुम अद्भुत स्त्री हो। तुम्हारे प्रेममें जलन है, तुम्हारी घृणामें जलन है। तुम अद्भुत स्त्री हो। प्रतीकारके लिए अपनी सारी जवानी भेंट कर देना असाधारण घटना है। परंतु आँखें खुलनेपर उसका प्रायश्चित्त करनेके लिए अपने प्राण तक निछावर करनेको उद्यत हो जाना, उससे भी अधिक असाधारण घटना है। तुम अद्भुत स्त्री हो।

सुखदा—जी तो नहीं चाहता, परन्तु विवश होकर कहना पड़ता है कि इस समय यहाँसे निकल जाओ।

पवन—परमात्मा करे, मैं तुम्हें इस मृत्युसे बचा सकूँ।

सुखदा—मैं बच जाऊँगी।

(पवनका प्रस्थान)

सुखदा—आज पता लगा कि प्रेम और प्रतीकारमें कितना अन्तर है। इस समय उसके मुँहपर कैसी प्रसन्नता, कैसी कान्ति थी। देखकर हृदयकी ज्वाला शीतल हो गई। कदाचित् मैं यह बात पहले जानती तो इस अग्निसे इतने हृदय दग्ध न होते। निर्दोष अञ्जनाके

सास ससुर रो रहे हैं, माता पिता रो रहे हैं, पति रो रहा है, परन्तु वह कहाँ है ? ओः मेरी आँखें भयसे बन्द होने लगी हैं। मेरे पापी हाथ काँप रहे हैं। इन्हींने उसकी छातीमें छुरी भोंक दी थी। यदि यह बात पवनको बता देती तो क्या फिर भी वह मुझसे इसी तरह बोलता ? बस यह उचित प्रायश्चित्त है कि उसके लिए यहाँ मर जाऊँ। इस समय मौत कैसी प्यारी मालूम होती है ! (कंबल ओढ़कर लेट जाना।)

[विद्युत्प्रभका प्रवेश]

विद्युत्प्रभ—क़ैदी क्या सो रहा है ?

सुखदा—(एकाएक खड़ी होकर।) राजकुमार !

विद्युत्०—हाय ! तुम कौन हो सुखदा ?

सुखदा—हाँ हाँ सुखदा, पहिचान लिया ?

विद्युत्०—बोलो, पवन कहाँ है ?

सुखदा—निकल गया, भाग गया।

विद्युत्०—और इसमें सहायता तुमने दी ?

सुखदा—हाँ हाँ मैंने। ये कपड़े देखते हो ?

विद्युत्०—मूर्खा स्त्री ! तुमने यह क्या कर दिया !

सुखदा—वही जो करना उचित था।

विद्युत्—शायद सोया हुआ प्रेम जाग उठा होगा।

सुखदा—चुप ! तुम इस शब्दके अधिकारी नहीं हो, नराधम !

विद्युत्०—इसका पुरस्कार तुमको लेना पड़ेगा।

सुखदा—यह मैंने पहले सोच लिया है।

विद्युत्०—मेरा क्रोध अब तुमपर उतरेगा।

सुखदा—इसकी मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं।

विद्युत्०—परन्तु मेरा क्रोध अति भयानक होगा।

सुखदा—मुझे पहलेसे मालूम है। तुम्हारी प्रकृतिसे मैं पूर्णतया परिचित हूँ।

विद्युत्०—तुमने यह क्या किया?

सुखदा—आपने पापका प्रायश्चित्त।

विद्युत्०—परन्तु मेरे परिश्रमपर तो पानी फेर दिया!

सुखदा—नहीं, यह न कहो। मैंने विषका प्याला जो तुम्हारे होठोंतक पहुँच चुका था तोड़ दिया है। मैंने पापका सर्प जो तुमको डसने लगा था, हटा दिया है। मैंने अज्ञानकी पट्टी जो तुम्हारी आँखों-पर थी, उतार दी है, अब उसे दोबारा आँखोंपर न चढ़ाओ। विद्यु-त्प्रभ, तुमने बहुत पाप किये हैं। परन्तु अभी समय बाकी है, शरीरमें शक्ति है, बुद्धि सोचती है, अन्धकारसे बाहर निकलो, प्रका-शमें आओ, पाप और पुण्यका विचार करो और सोचो कि तुम यहाँ क्या करने आये थे और क्या कर रहे हो। अभी अवसर है, इसे हाथसे न जाने दो।

विद्युत्०—मुझे तुम्हारे उपदेशकी आवश्यकता नहीं। तुमने भूखे शेरके मुँहसे उसका शिकार छीना है, तुमने सोते हुए सर्पको ठोकर लगाई है, तुमने क्रोधाग्निको प्रचण्ड किया है, अब मृत्युसे क्यों डर रही हो?

सुखदा—मैं मृत्युसे डरूँगी यह तुम्हारी भूल है। मैंने प्रेम-सुधा-रस पान किया है, मैंने प्रेमके शब्द सुने हैं, क्या तिसपर भी मृत्यु भयावनी और डरावनी रह सकती है? नरपिशाच! मृत्यु तेरे जैसे दुष्टात्माओंके लिए भयजनक होगी। यदि मेरी मृत्यु तेरे सन्मुख आवे तो तुझे दिखा दूँ कि क्षत्रियकी बेटी किस बहादुरीसे मरना जानती है।

विद्युत्०—इतना घमण्ड ?

सुखदा—हाँ हाँ इतना घमण्ड ।

विद्युत्०—मूर्खा ! मृत्यु बड़ी भयानक होती है ।

सुखदा—परन्तु मेरे लिए नहीं ।

विद्युत्०—क्यों ?

सुखदा०—मैंने अपना ऋण उतार दिया है ।

विद्यत्०—अर्थात्—

सुखदा—एक प्राणीकी जान ली थी, एकको बचा दिया है ।

विद्युत्०—तो तुझे इसपर शोक नहीं ?

सुखदा—नहीं ।

विद्युत्०—कुछ भी ?

सुखदा—जरा भी नहीं ।

विद्यत्०—सिपाही !

[सिपाहीका प्रवेश]

विद्युत्०—आँखोंवाले अंधे ! देख, यह स्त्री थी जो क़ैदीसे मिलने आई थी। परन्तु तू भंग पिये पड़ा रहा और पक्षी पिंजरेसे निकल गया। मगर अब मेरे क्रोधका शिकार यही स्त्री होगी। जाओ, जाकर अपने आदमियोंको हुक्म दो कि यहाँ चिता चुन दें। मैं इसे आँखोंके सामने जलाकर भस्म कर दूँगा।

(सिपाहियोंका चिता जलाकर आग लगा देना और सुखदाके हाथ-पैर बाँध देना।)

सुखदा—मेरी मृत्यु ! मैं तेरे लिए व्याकुल हो रही हूँ ।

विद्युत्०—अभी शान्त हो जाओगी ।

सुखदा—इसकी पर्वा नहीं, परन्तु तुम्हारी चिन्ता है ।

विद्युत्०—क्या ?

सुखदा—वह समय आनेवाला है, जब तुम इसी तरह—जिस तरह मैं तुम्हारे सम्मुख खड़ी हूँ, पवनके सामने प्राणोंकी भिक्षा माँग रहे होगे। उस समय उनसे कह देना कि सुखदा मरते समय तुम्हारा नाम होठोंपर और तुम्हारा चिंतन मनमें लिये हुए मरी है। और कहती गई है कि विद्युत्प्रभको पाप-कर्मपर मैंने उभारा था, इस लिए यदि तुम समझते हो कि मैंने तुमपर कोई उपकार किया है, तो उसकी स्मृतिमें विद्युत्प्रभको प्राण-भिक्षा दे दो। मेरी आत्मा प्रसन्न हो जायगी।

विद्युत्प्रभ—ओह! यह वाग्बाण असह्य हो रहे हैं। उठा कर आगमें फैंक दो।

(सिपाहियोंका सुखदाको आगमें फैंकना। अञ्जनाका मरदाना वेशमें सिपाहियों-समेत आना और सुखदाको आगसे निकाल लेना। विद्युत्प्रभ और उसके सिपाहियोंका भाग जाना। सुखदाका अचेत पड़े रहना।)

अञ्जना—परमात्मा! तेरी अपार दया! मैंने अपने पतिका ऋण उतार दिया। यही स्त्री है जो मेरी यंत्रणाका कारण बनी। इसीने मुझ-पर दोषारोपण किया। इसीने मुझे संसारकी दृष्टिमें नीचा किया। परन्तु अब इसीने मेरे प्राण-पतिके प्राण बचाये हैं। अब यह मेरी सखीके समान है। सिपाही! इसे हनुपुर ले जाओ और आरामसे रक्खो। मैं उनको खोजकर आऊँगी। उनको अभीतक मालूम नहीं कि मेरा पता लग गया है। कहीं वह—ओह परमात्मा! मैं क्या करूँगी।

(यवनिका पतन)

पाँचवाँ अङ्क

पहला दृश्य

स्थल—हनुपुरका राजमहल

समय—दोपहर

[वसन्तमाला और वैद्यराज]

वसन्तमाला—तो क्या अभी तक कुछ आराम नहीं हुआ ?

वैद्यराज—अभी नहीं ।

वसन्तमाला—और उसी तरह पागल है ?

वैद्यराज—उसी तरह ।

वसन्त०—आह ! कैसा भयानक रोग है !

वैद्यराज—सोती सोती बड़बड़ाकर उठी, पहरेदारोंको बुलाया और बोली, मैंने यहाँ कुछ आदमी देखे थे, वे कहाँ हैं । पहरेदारोंने उत्तर दिया, यहाँ कोई नहीं आया । इसपर क्रोधमें आ गई, और कहने लगी, तुम झूठ बकते हो । इसके बाद रोई, फिर हँसी । फिर अपना दुपट्टा लेकर अपने हाथ बाँध लिये और पैरोंमें जंजीर डाल ली । इसके बाद भूमिपर घुटने टेककर बैठ गई, और इतनी रोई, इतनी रोई कि कपड़े तर हो गये । फिर हँसी और चारपाईके नीचे लेटकर गहरी नींदमें सो गई । एकाएक चिल्लाकर फिर उठी और अपना मुँह नोंच लिया ।

वसन्तमाला—और यह सब कुछ बेहोशीमें करती है ?

वैद्यराज—पूरी बेहोशीमें, लो वह इधर आ रही है ।

वसन्तमाला—आँखोंसे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि पूरी पगली है ।

वैद्यराज—सुनो, कुछ कह रही है।

[हाथ-पैर जकड़े हुए सुखदाका प्रवेश]

सुखदा—छोड़ दो, मैं अब कुछ न करूँगी; मुझे नींद आ रही है।

वैद्यराज—राजकुमारी, अब क्या हाल है?

सुखदा—मौतके जमदूत मेरे पीछे पड़े हुए मुझे नरकमें ले जानेका यत्न कर रहे हैं। मगर मैं वहाँ न जाऊँगी। वहाँ अग्नि है, मुझे गरमी लगेगी। वहाँ अथाह सागर है, मैं डूब जाऊँगी। वहाँ स्याही है, मेरा रंग काला हो जायगा।

वैद्यराज—राजकुमारी, क्या कह रही हो?

सुखदा—तुम कौन हो, जो मेरा कहना नहीं मानते? यहाँसे चले जाओ। तुम्हारी बातोंसे हृदय काँप उठता है। तुम्हारी आँखोंमें कैसी लाली है! इसे देखकर मुझे अञ्जनाका खून याद आता है। रात अँधेरी थी, दुनिया चुप थी, वायु सोया हुआ था, परन्तु मेरे हृदयमें भूकम्प उठ रहा था।

वैद्यराज—चलो फिर वही अञ्जना याद आ गई।

सुखदा—तो क्या छुटकारा नहीं हो सकता? हाय क्या रिश्वत दूँ? आँसू ले लो, ठंडी आहें ले लो। पर तुम नहीं सुनते, क्या तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूँ। मैं अमृतपुरके राजाकी बेटी हूँ। मैं आज्ञा दे रही हूँ परन्तु तुम नहीं सुनते। मेरा राज्य ले लो। मैं भिखारिन बनकर रह लूँगी, मैं नरकमें न जाऊँगी। कौन कहता है मैंने अञ्जनाको मारा है? वह तो ललिता थी, मैं सुखदा हूँ।

वसन्तमाला—प्रकृतिका कितना भयानक प्रतीकार है!

वैद्यराज—आज अवस्था बहुत बिगड़ गई है, दवाई दी थी?

वसन्तमाला—हाँ, दो बार दे चुकी हूँ, परन्तु कोई असर नहीं हुआ।

सुखदा—नहीं वह तुम्हारा है, मैं कुछ न बोलूँगी, कुछ न कहूँगी, तुम उसे लेकर आरामसे रहो। मैं ठंडी आह भी न भरूँगी। केवल देखकर आँखें तृप्त करूँगी। वह देखता है। तुम देवी हो, मैं राक्षसी बनकर मध्यमें कूद पड़ी, परन्तु अब न कूदूँगी। राजकुमारी अञ्जना! मुझे क्षमा करो। मैं सजल नेत्रोंसे प्रार्थना कर रही हूँ, क्या तुम्हें मुझपर तरस नहीं आता? मेरा हृदय टूट गया है।

वसन्तमाला—(कंधेपर हाथ रखकर) राजकुमारी, होश करो।

सुखदा—तुम स्त्री हो?

वसन्तमाला—हाँ।

सुखदा—उसमें हृदय है?

वसन्तमाला—हाँ।

सुखदा—तो परे हटो, मेरे पास न आओ, उसमें प्रेम छिपा होगा।

वसन्तमाला—शोक, इसका क्या हाल हो गया!

सुखदा—अपने हृदयको निकाल, उसे पीसकर चकनाचूर कर दे और मेरे समीप आ, मैं तुझे हृदय-शून्य समझकर प्यार करूँगी। परन्तु हृदयके रहते हुए तेरी छाया भी अपने ऊपर न पड़ने दूँगी; प्रेम फिर मेरे हृदयमें व्याप्त हो जायगा। बोल, तेरे हृदय है?

वसन्तमाला—हाँ है।

सुखदा—उसे किसीकी चाह है?

वसन्तमाला—एक स्त्रीकी।

सुखदा—स्त्रीकी?

वसन्तमाला—हाँ एक स्त्रीकी।

सुखदा—तो कोई हर्ज नहीं, मेरे पास आ, मुझे थोड़ा-सा प्रकाश ला दे, मैं काले दिलमें रख लूँगी, वहाँ चाँदना हो जायगा। देख मैं गिरी, मुझे कुछ दिखाई नहीं देता। मेरा हृदय टूटा, थोड़ी-सी मरहम दे, उसे जोड़ लूँगी। क्या तूने अञ्जनाको देखा है?

वसन्तमाला—हाँ देखा है।

सुखदा—कब? कहाँ? वह तो मर चुकी है।

वसन्तमाला—नहीं, वह तो जीती है।

सुखदा—झूठी।

वसन्तमाला—तुमने भूलसे चंपाको मार दिया, अञ्जना बच गई है।

सुखदा—यह प्रकाश कहाँसे आया, मेरा हृदय चमक उठा। तुम्हारी आँखोंसे, हाँ, उन्होंने अञ्जनाको देखा है। वह प्रकाशमयी ज्योतिर्मयी थी, मेरा हृदय चमक उठा है। तुम्हारे कोमल हाथोंमें उसकी कोमलता है, उसे मेरे जले हुए हृदयपर फेरो।

वसन्तमाला—परमात्मा करे, मेरी आँखें तुम्हें आनन्दमें देख सकें।

सुखदा—जब आनन्द बह रहा था, उस समय मेरा आत्मा प्रतीकारके लिए व्याकुल हो रहा था। दौड़ो, वे फिर आ गये।

वैद्यराज—फिर दौरा हुआ।

वसन्तमाला—कौन आ गये?

सुखदा—यन्त्रणाके जमदूत। उनके हाथोंमें अग्निके गुर्ज हैं। परमात्मा बचा, मैं अब कभी प्रेम न करूँगी। (वेगसे प्रस्थान)

वैद्यराज—रोग दिन प्रति दिन बढ़ रहा है।

वसन्तमाला—पापोंका दण्ड इस जगतमें ही मिलने लग गया।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—पशुमुखा वनका भीतरी भाग

समय—चाँदनी रात

[शेरों और गीदड़ोंकी आवाजोंमें प्रहसित अकेला खड्ग लिये खड़ा है।]

प्रहसित—क्या करूँ, किधर जाऊँ, कुछ पता नहीं लगता। बराबर कई दिनसे खोज रहा हूँ, पैरोंमें छाले पड़ गये हैं, शरीर जर्जर हो गया है, परन्तु राजकुमारका पद-चिह्न तक दिखाई नहीं देता। इधर अञ्जना देवीका भी कुछ पता नहीं लगा। ऐसे जंगलमें कब तक निर्वाह हो सकेगा! घोर असमंजसमें पड़ा हूँ, न राजकुमारका पता लगता है, न वापस जा सकता हूँ। महाराजको कौन-सा मुँह दिखाऊँगा। जब वे पूछेंगे कि राजकुमार तुम्हारे सुपुर्द किया गया था, कहाँ है, तो क्या उत्तर दूँगा। जब वे निराश होकर आँसूभरी आँखोंसे मेरी ओर देखेंगे तो कैसे सहूँगा। (शेरकी आवाज़) शेर बोल रहा है। निश्चय वह इधर आ रहा है। (चीखकी आवाज़) हाय, किसी मनुष्यपर आक्रमण कर रहा है। क्या यह पवन ही तो नहीं? (तलवार खींचकर प्रस्थान और थोड़ी देरके बाद पवनको उठाये हुए प्रवेश। तलवारसे खून टपक रहा है।) यदि मैं समयपर पहुँच न जाता, तो राजकुमार शेरका शिकार हो गये थे। परमात्मा! तुझे धन्य है कि तूने मुझे राजकुमार वापस किया।

(मरहम लगाते हैं, पवन आँख खोलता है।)

प्रह०—राजकुमार!

पवन—कौन प्रहसित?

प्रह०—हाँ, आपका सेवक प्रहसित।

पवन—कुछ पता चला ?

प्रह०—नहीं ।

पवन—कुछ ?

प्रह०—कुछ नहीं ।

पवन—तो मुझे बचानेकी क्या जरूरत थी, तुमने मुझे क्यों बचाया ?

प्रह०—राजकुमार उनका पता लग जायगा ।

पवन—लग जायगा? नहीं, तुम मुझे धोखा दे रहे हो । उसका पता नहीं लग सकता । वह स्वर्गकी देवी स्वर्गमें पहुँच चुकी और तुम मुझे व्यर्थ धोखा दे रहे हो । अगर वह जीती होती, तो इस समय मेरा नाम वनमें गूँजता होता । मेरी आत्माको ज्ञान हो जाता कि वह यहाँ है । परन्तु देखते हो, चाँदनी कैसी फीकी है, वनकी शोभा कैसी उदास है ! नहीं मित्र, मुझे धोखा न दो, वह इस जगतमें नहीं है ।

(जोशसे खड़े हो जाते हैं ।)

प्रह०—राजकुमार लेट जाइए, घाव खुल जायँगे ।

पवन—खुल जाने दो, मुझे इसकी चिन्ता नहीं । देखो, शेर दहाड़ रहा है । मुझे जाने दो, मैं अपना सिर उसके मुँहमें दे दूँगा ।

प्रह०—जब तक मेरे हाथोंमें तलवार और तलवारमें काट करनेकी शक्ति है, तब तक आपकी ओर क्या मजाल है जो शेर पैर भी बढ़ा सके । मृत्युकी क्या मजाल है जो आपकी ओर आँखें भी उठा जाय ।

पवन—शोक ! मुझमें इतना भी सामर्थ्य नहीं कि मर ही सकूँ । मुझसे अधिक अभागा कौन हो सकता है प्रहसित ?

प्रह०—राजकुमार !

पवन—तुम मेरे मित्र हो, तुमने मेरी बहुत सेवा की है।

प्रह०—नहीं, मैंने कुछ नहीं किया।

पवन—एक बात मानोगे?

प्रह०—आज्ञा कीजिए, मैं पालन करूँगा।

पवन—मुझे अकेला छोड़ दो, मैं उसे ढूँढूँगा।

प्रह०—क्या मेरा साथ खोजमें बाधक है?

पवन—परन्तु मेरा हृदय एकान्त चाहता है।

प्रह०—एक बार साथ छूट गया था, तो कई दिन रोता रहा हूँ। अब साथ न छोडूँगा। छायाके समान आपके साथ साथ रहूँगा।

पवन—तो आओ, चलकर उसकी खोज करें, कदाचित् मिल जाय।

(वेगसे प्रस्थान)

प्रह०—ठहरो राजकुमार, ठहरो, मैं भी आता हूँ। (प्रस्थान)

[रत्नवीर और श्रीदेवका प्रवेश।]

रत्नवीर—तो कुछ पता चला?

श्रीदेव—केवल यह कि वह हनुपुरके राजमहलमें है, और वहाँ उसका इलाज हो रहा है।

रत्नवीर—यह पुरानी बात है।

श्रीदेव—इसके बाद कोई समाचार नहीं?

रत्नवीर—है।

श्रीदेव—क्या?

रत्नवीर—वह पागलपनमें बाहर निकल आई है, और इस समय इसी वनमें है।

श्रीदेव—इस वनमें?

रत्नवीर—हाँ हाँ, इसी वनमें। इस लिए सावधान रहो, बदला लेनेका समय आ गया है। वह चम्पाकी आत्मा अशान्तिसे इधर देख रही है। सुखदा, तेरा बचना अब कठिन ही नहीं, असम्भव है।

श्रीदेव—वह कौन स्त्री इधर आ रही है।

रत्नवीर—(देखकर) सुखदा नहीं, इस लिए आओ चलें और उसको ढूँढें। (दोनोंका प्रस्थान)

[अञ्जनाका प्रवेश]

अञ्जना—चाँद! कुछ तू ही बता। वृक्षो! कुछ तुम ही बोलो। भूमि, तू भी चुप है। वायु तुझसे किसी लाचारकी सहायता नहीं होती। पता नहीं, मेरे प्रारब्धमें अभी क्या लिखा है।

[चार सिपाहियोंका प्रवेश]

अञ्जना—(एकसे) कुछ पता चला?

पहला—कुछ नहीं।

अञ्जना—(दूसरेसे) तुम्हें?

दूसरा—हमारे चले आनेके बाद राजकुमार आदित्यनगरके गुप्त बंदीगृहमें राजकुमारी सुखदाको छुड़वाने गये, परन्तु निराश होकर लौट आये। राहमें उन्हें मालूम हुआ है कि उनके सैनिक उसे छुड़वा कर ले गये हैं। परन्तु यह समाचार उन तक नहीं पहुँचा कि सैनिकोंके साथ आप भी थीं। इस लिए वे उसी तरह घबराये हुए आपकी खोजमें चले गये।

अञ्जना—कुछ यह भी पता लगा कि वे किस ओर गये हैं?

दूसरा—इसी वनकी ओर।

अञ्जना—(तीसरेसे) कुछ तुम्हें भी मालूम हुआ?

तीसरा—कोई दो घड़ीकी बात है, मैं एक ऊँचे वृक्षपर चढ़कर चारों ओर देख रहा था। क्या देखता हूँ कि राजकुमार चुपचाप चाँदकी ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं और किसी गहरी निद्रामें निमग्न हैं। इतनेमें एक भयानक सिंह झाड़ीसे निकला और राजकुमारपर लपका। राजकुमारने चीत्कार किया और मैं वृक्षसे उतरकर वेगके साथ उधरको दौड़ा।

अञ्जना—(घबराकर) इसके बाद फिर क्या हुआ ? तुम वहाँ पहुँचे ?

तीसरा—परन्तु वहाँ पहुचकर क्या देखता हूँ कि सिंहकी लाश पड़ी है और भूमि रुधिरसे लाल हो रही है।

अञ्जना—और राजकुमार ?

तीसरा—उनका कोई पता नहीं लगा। परन्तु यह साफ प्रकट होता है कि वे हैं, चिन्ताकी कोई बात नहीं।

अञ्जना—(चौथेसे) कुछ तुम्हें पता लगा या नहीं ?

चौथा—जब सिंहने उनपर आक्रमण किया तो प्रहसित उसी स्थानपर उनकी खोज कर रहा था। चीत्कार सुनकर वह तलवार लेकर चढ़ दौड़ा और सिंहपर लपका। सिंहने क्रोधमें आकर राजकुमारका ध्यान छोड़ दिया और प्रहसितपर झपटा। प्रहसितने तलवार उसके पेटमें भोंक दी और राजकुमार और अपने आप दोनोंको बचा लिया। परन्तु जोशकी हालतमें राजकुमार प्रहसितसे फिर बिछुड़ गये हैं। मैंने उनको बता दिया है कि यदि राजकुमारका मिलाप हो तो उनसे कह दें कि आप जीती जागती हैं और उनकी खोजमें भटक रही हैं।

[महात्मा अश्वपतिका प्रवेश]

अञ्जना—प्रणाम करती हूँ भगवन्!

अश्वपति—सौभाग्यवती हो पुत्रि! ऐसी रातमें और ऐसे वनमें तुम कहाँ भटक रही हो?

अञ्जना—महाराज अभी तक—

अश्वपति—क्षत्रियका उत्साह न छिप सका। रात्रिका अन्धकार चन्द्रमाकी चाँदनीको न हटा सका। शाबाश बेटी, शाबाश! यही पातिव्रत्य धर्म भारतकी सम्पत्ति है। वह देखो धुँआ उठ रहा है। वहाँ राजकुमारसे मिलाप होगा। शीघ्रतासे पैर उठाओ। राजकुमार आत्म-हत्या करनेकी तैय्यारियाँ कर रहा है। उसे विश्वास हो गया है कि तुम इस संसारमें नहीं रहीं।

अञ्जना—महाराज कहीं—यदि यह हुआ तो मैं कहींकी न रहूँगी।

अश्वपति—शान्ति! पुत्रि शान्ति! तुम्हारे बालकके प्रारब्धमें पितृ-वियोगका दुःख नहीं लिखा है। निश्चिन्त होकर जाओ, तुम्हारे दुःखोंकी यह अन्तिम रात्रि है। कलके सूर्यकी पहली किरण तुमको मुस्कराते हुए देखेगी।

अञ्जना—परमात्मा! उनकी रक्षा कर, मैं और कुछ नहीं चाहती।

(एक ओरसे अंजना और सिपाहियोंका, दूसरी ओरसे अश्वपतिका प्रस्थान।)

[तीसरी ओरसे प्रहसितका प्रवेश]

प्रह०—फिर बिछुड़ गया। पता नहीं, प्रारब्धमें क्या लिखा है। मै तीरकी तेजीसे गया, परन्तु तिसपर भी उन तक न पहुँच सका। आशाकी बिजली चमककर फिर छिप गई। अन्धकार और गाढ़ा हो गया। महाराज आ रहे हैं; उनको मैं क्या कहूँगा?

[राजा प्रतिसूर्य्य, महेन्द्रराय और सिपाहियोंका प्रवेश]

महेन्द्रराय—प्रहसित !

प्रह०—श्रीमान् नरेश !

महेन्द्रराय—यहाँ क्या कर रहे हो ?

प्रह०—महाराज ! राजकुमार बिछुड़ गये हैं।

महेन्द्रराय—वह धुआँ उठ रहा है देखते हो ?

प्रह०—हाँ महाराज, देखता हूँ।

महेन्द्रराय—राजकुमार वहीं हैं।

प्रह०—क्या श्रीमानने देखा ?

महेन्द्रराय—नहीं, देखा नहीं, एक महात्माने बतलाया है।

प्रह०—तो चलिए चलें, वे कुछ कर न गुजरें।

प्रतिसूर्य्य—नहीं, अब यह नहीं हो सकता। अञ्जना उधरको जा चुकी है। मुद्दतसे बिछुड़े हुओंका मेल होनेको है, इस लिए तनिक ठहर जाओ, दिलकी भड़ास निकल जाने दो।

महेन्द्रराय—आपने कुछ और भी सुना ?

प्रतिसूर्य्य—क्या ?

महेन्द्रराय—राजकुमारी सुखदाने प्रतीकारके लिए अञ्जनाको मारना चाहा था, परन्तु सौभाग्यसे यह तजवीज एक दासी चम्पाने सुन ली। वह जल्दीसे पशुमुखा वनमें पहुँची और सोती हुई अञ्जनाको उठाकर दूसरे स्थानमें डाल दिया और आप उसके स्थानमें सो गई।

प्रतिसूर्य्य—फिर ?

महेन्द्रराय—क्रोधसे अंधी बनी हुई सुखदा रातके समय छुरी लेकर आई और अन्धकारमें पहचान न सकी कि अञ्जना बच गई और चम्पा मारी गई। अब उसके दोनों भाई रत्नवीर और श्रीदेव

सुखदाके मारू हो रहे हैं, और उसकी खोजमें लगे हुए हैं। जब तक वह आपके पास थी, तब तक भय न था, परन्तु अब वह वहाँसे निकल आई है।

प्रतिसूर्य्य—मूर्ख स्त्री नहीं जानती कि मृत्यु उसके सिरपर खेल रही है, और दुर्भाग्य उसे इस वनमें खींच लाया है। परन्तु आपने विद्युत्प्रभके बारेमें भी कुछ सुना?

महेन्द्रराय—नहीं, कुछ नहीं।

प्रतिसूर्य्य—वह साधू हो गया है और राज-पाट त्याग करके इसी वनमें आ रहा है। कहीं पास ही उसकी कुटिया है। वह चाहता है कि अपने कुकर्मोंका पश्चात्ताप करे और पहले जीवनमें जितनी बुराई कर चुका है, अब उससे अधिक भलाई करे।

महेन्द्रराय—परमात्मा करे कि उसका मनोरथ सफल हो और वह सन्मार्गपर चल सके। हमारी यही इच्छा है।

(सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—पशुमुखा वनका एक अन्य भाग

समय—चाँदनी रात

[चिता जल रही है। पवन टूटी हुई अँगूठी लिये सामने खड़ा है।]

पवन—इस बातका जीता जागता प्रमाण कि अञ्जना अब इस लोकमें नहीं है, इस बातका अखण्डनीय विश्वास कि उसका मेल इस संसारमें असम्भव है, यह टूटी हुई अँगूठी है। वह प्रेममयी थी, प्रेम उसके शरीरमें रुधिरकी धारा बनकर चक्कर लगाता था। प्रेम उसके

जीवनकी ज्योति थी। वह प्रेम खाती थी, प्रेम पीती थी, और प्रेमके वायुमें निवास करती थी। वनमें—जहाँके काँटे नुकीले और वृक्ष हृदयशून्य हैं—वह कैसे जीती रह सकती थी? वह कुसुमके समान पवित्र थी परन्तु दुनियाकी आँखोंने उसे न पहचाना और निर्दय हृदयोंने उसका वह सम्मान न किया, जिसके वह योग्य थी। उसका किसीने विश्वास न किया, उसके कहनेपर किसीने कान न धरा। सास गैर थी, धोखा खा गई, परन्तु माता-पिता भी अंधे हो गये। उनकी तो वह बेटी थी, उनकी बुद्धिपर क्यों पर्दा पड़ गया? वह प्रेम जो माता-पिताकी दुनियामें कुरूप सन्तानको सुरूपवान् और सामान्य बुद्धिको अद्भुत चमत्कार बना देता है, जो सन्तानके तनिक संकटपर फूट फूटकर रोता है और उसकी प्रसन्नतापर आनन्दसे पागल हो उठता है, उस समय कहाँ सोया हुआ था? सहानुभूतिका वह स्रोत जो माता पिताकी छातीमें सन्तानकी आँखमें एक अश्रुबिन्दु देखकर उबल पड़ता है उस समय कहाँ छिपा हुआ था? चाँद! देखते देखते मेरा संसार काला हो गया, परन्तु तू अभीतक चमक रहा है। तू उस समय भी चमक रहा था, जब मैंने उसको बारह बरसके लिए परित्याग कर दिया था, और वह निर्दोषा दिन-रात रो-रोकर अपना समय बिताती थी। तू अब भी चमक रहा है, जब मैं उसके वियोगमें पागल हो रहा हूँ और जलनेकी तैय्यारियाँ कर रहा हूँ। कुछ घड़ियोंके बाद जब मेरे शरीरके परमाणु अग्निद्वारा बिखर जायँगे और मेरी आत्मा उसकी खोजके लिए परलोकको प्रस्थान करेगी, तू उस समय भी चमकता होगा, और देख रहा होगा कि मेरी चितापर कौन आकर रोता है और कौन अपने शोकको सन्देहके पर्देमें छुपानेका प्रयत्न करता है। विधाताने मुझे अन-

मोल हीरा दिया, परन्तु मैंने उसे न पहचाना। मेरी यही अदूरदर्शिता इस समय मेरी स्मृतिमें अग्निके समान जल रही है। (अग्निको देखकर) समय हो गया। अग्निकी ज्वाला मुझे प्रेमका निमंत्रण देने लगी। आज यह कैसी प्रिय प्रतीत होती है। अग्नि ! मुझे उससे मिला दे। मैं तेरा यश गाता हुआ तेरी ज्वालामें भस्म हूँगा। भारतकी स्त्रियाँ इसी मार्गसे अपने प्यारोंके पास पहुँचा करती हैं। क्या कोई पुरुष उनका अनुकरण नहीं कर सकता ? प्रियतमा ! प्रियतमा ! मैं आ रहा हूँ। वियोगका समय गया। अब आनन्द और प्रसन्नताकी घड़ियाँ........
(चितामें कूदनेको उद्यत होना)

[एकाएक अञ्जनाका प्रवेश]

अञ्जना—प्राणनाथ ! प्राणनाथ ! !

पवन—(चौंककर) न घबरा ! प्रियतमा, न घबरा ! मैं तेरे पास आ रहा हूँ। इस अन्तिम समयमें तेरी मधुर वाणी मेरे कानोंमें अमृत टपका रही है।

(अञ्जना पीछेसे आकर पकड़ लेती है। पवन क्रोध प्रकट करता है।)

पवन—निष्ठुर ! अन्यायी ! ! कौन है, जो मुझे इस समय इस शुभ कार्य्यसे रोक रहा है ?

अञ्जना—वही प्राणनाथ, वही, जिसके लिए आप यह अशुभ कार्य्य करने लगे थे।

पवन—कौन ! अञ्जना ! मेरी प्राणप्यारी ! बोलो, बताओ मेरी आँखें धोखा तो नहीं खा रही ? मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा ?

अञ्जना—नहीं प्राणनाथ ! प्राणपति ! आपकी दासी आपके चरणोंमें उपस्थित है।

पवन—तो तू जीती है, यह अँगूठी झूठ बोलती है ?

अञ्जना—हाँ प्राणनाथ, मैं जीती हूँ । हनुपुरसे आपकी खोजमें आ रही हूँ ।

पवन—तो मुझे सँभालो, मैं आनन्दसे मूर्छित हो जाऊँगा । मेरी प्यारी ! मेरी अपनी अञ्जना !

अञ्जना—मेरे जीवन-सर्वस्व ! मेरे चन्द्रमा !

(गले लिपट जाते हैं । पवन मूर्छित हो जाते हैं । अञ्जना सँभालती है ।)

अञ्जना—परमात्मा ! यह तेरी अपार दया ।

पवन—(आँख खोलकर) यह स्वप्न तो नहीं, यह हाथ किसका है ?

अञ्जना—आपकी प्रियाका ।

पवन—प्रिया ! प्रिया ! आज मेरा परिश्रम सफल हुआ । प्रिया!

अञ्जना—जीवन-नाथ !

पवन—तुम इस समय तक कहाँ थीं ?

अञ्जना—इन बातोंका अवकाश नहीं । जब कभी आरामसे बैठेंगे उस समय यह सब कहानी सुनाऊँगी ।

पवन—(स्वगत) यदि यह हो जाता तो—

अञ्जना—आप क्या सोच रहे हैं ?

पवन—यह कि यदि तुम देर करके पहुँचती, तो यहाँ क्या हो जाता ?

अञ्जना—न कहो प्राणनाथ ! यह न कहो । मेरा हृदय व्याकुल हो जायगा ।

पवन—इस चिताका धुआँ ही हमारे मेलका कारण हुआ ।

अञ्जना—इसीको देखकर मैं दौड़ती हुई यहाँ आई हूँ ।

[पवनका उठना । राजा प्रतिसूर्य, महेन्द्रराय, प्रह्लाद, विद्याधर और प्रहसितका प्रवेश]

पवन—प्रणाम करता हूँ, महाराज।

सब—चिरंजीवि हो पुत्र, चिरंजीवी हो।

महेन्द्रराय—आजकी रात्रि हमारे वंशके इतिहासमें सदा यादगार रहेगी, जब बिछुड़े हुए हृदयोंका मिलाप हुआ।

अञ्जना—(सिर झुकाकर) मैं भी प्रणाम करती हूँ।

विद्याधर—सौभाग्यवती हो, बेटी! सौभाग्यवती हो! तुमपर हमारे कुलको ही नहीं भारत-भरको सम्मान है। तुमने स्त्रियोंका गौरव बढ़ाया है। तुमने पति-प्रेमका अद्भुत परिचय दिया है। तुमने दिखा दिया है कि भारत-नारियोंके हृदयमें भी पुरुषत्व भरा हुआ है और वे पतिके लिए नगर तथा वन दोनोंको एक समान जानती हैं।

(पर्दा गिरता है)

चौथा दृश्य

स्थान—पशुमुखा वन। एक कुटियाका बाहरी भाग

समय—सबेरा

[रत्नवीर और श्रीदेवका प्रवेश]

श्रीदेव—लो वह आ रही है।

रत्नवीर—अंधकारकी बेटी, अंधेरीका नमूना।

श्रीदेव—पगली, मूर्खा अपनी मृत्युकी ओर बढ़ रही है।

रत्नवीर—नहीं, प्रकृतिका नियम उसे खींचकर ला रहा है। उसके नीचे मृत्युका जाल बिछा रहा है।

श्रीदेव—अब बैठकर क्या कर रही है?

रत्नवीर—हाथ मल-मलकर धो रही है। इसे वहम हो गया है कि अञ्जनाका रुधिर उसके हाथोंमें अभी तक लगा है, जिसके धोखेमें इसने हमारी बहिनको मार दिया है।

श्रीदेव—उस धब्बेको मिटा रही है।

रत्नवीर—परन्तु अग्निसे गर्मी और रेशमसे नर्मी छीननेका प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता।

श्रीदेव—वह उठ बैठी।

रत्नवीर—आ रही है। आओ जरा छुप जायँ। प्रकृति उससे पापोंका बदला ले रही है।

श्रीदेव—कैसा भयानक रोग है!

रत्नवीर—वह इससे भी अधिक दण्डके योग्य है।

[सुखदाका जलका लोटा लिये आना]

सुखदा—तू जल है, तुझसे मल दूर हो जाता है। फिर तू मेरे हाथोंको क्यों साफ नहीं करता? बराबर कई दिनोंसे धो रही हूँ परन्तु पापका धब्बा मिटनेमें नहीं आता। पिशाचिन! चुड़ैल! तूने क्या कर दिया? इस समय एकान्त है, चारों ओर सन्नाटा है, कोई आँख नहीं देखती, कोई कान नहीं सुनता, उतावलीसे हाथ धो डाल, नहीं तो प्रकृति निद्रासे जाग उठेगी और तेरे पापोंकी दुर्गन्धि सूँघती हुई तुझे पकड़ लेगी। परन्तु मेरे हाथका धब्बा सामान्य धब्बा नहीं, जो साधारण जलसे दूर हो सके। इसे मेटनेके लिए तो सातों समुद्रोंका जल भी असमर्थ है। नहीं नहीं, मैं अकेली इस कामको नहीं कर सकती। मुझे किसीकी सहायताकी आवश्यकता है। (द्वारपर हाथ मारकर) अन्दर कौन है? द्वार खोलो और एक दुखिया स्त्रीकी सहायता करो।

[विद्युत्प्रभका द्वार खोलकर बाहर निकलना]

विद्युत्प्रभ—कौन सुखदा! ललिता!

सुखदा—हाँ सुखदा! ललिता!

विद्युत्प्रभ—नहीं सुखदा नहीं, ललिता भी नहीं। तुम मेरे हृदयकी स्याही हो, मेरे पापोंका भयानक चित्र हो, मेरी बुराइयोंका शरीरधारी प्रमाण हो, मेरे कुकर्मोंकी स्मृति हो, मेरे आत्माका बोझा हो।

सुखदा—नहीं, मैं तो इनमेंसे कुछ भी नहीं। मुझसे घृणा न करो, मेरे समीप आओ।

विद्युत्प्रभ—मैं तुमसे भागता हूँ। परंतु तुम छायाके समान मेरा अनुकरण कर रही हो, इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन है? क्या इस निर्जन स्थानमें भी मेरे लिए शान्ति नहीं?

सुखदा—हम दोनोंने एक ही समयमें पाप-मार्गपर चलना आरम्भ किया था। अब जब कि यह भयावना नाटक समाप्तिपर आया है तो क्या हमारा एक ही स्थानपर होना समुचित नहीं? मैं जलानेवाली अग्नि हूँ, तुम डुबानेवाले अथाह सागर हो। एक साथ चले थे, एक साथ ठहर जायँगे।

विद्युत्प्रभ—तुम मुझसे क्या चाहती हो?

सुखदा—इधर आओ।

(विद्युत्प्रभका समीप आना)

सुखदा—मेरा हाथ देख रहे हो?

विद्युत्प्रभ—हाँ।

सुखदा—इसपर जो दाग़ है, उसे भी देखते हो?

विद्युत्प्रभ—नहीं।

सुखदा—नहीं?

विद्युत्प्रभ—नहीं।

सुखदा—तब मालूम हुआ, तुम अभी अंधे हो। अरे मूढ़! नयन उघाड़ और ध्यानसे देख।

विद्युत्प्रभ—मुझे तो कुछ भी दिखाई नहीं देता।

सुखदा—तो मेरी आँखसे देख। इससे रुधिरका फुहारा छूट रहा है। मैंने एक स्त्रीका वध किया है, इसीसे हाथ रुधिरसे भर गया है। मैं इस रंगको छुटाना चाहती हूँ, परन्तु न जल काम आता है, न साबुन सहायता करता है।

विद्युत्प्रभ—सुखदा!—

सुखदा—सुखदा कहाँ है? उसकी तो उसी दिन मृत्यु हो गई थी, जब उसने राजकुमार पवनसे प्रेमकी भिक्षाकी याचना की थी, और उत्तरमें पवनने उसे घृणाकी-ठोकर लगाई थी। वह प्रेमकी भूखी थी। प्रेम उसके जीवनकी आशा था। प्रेमके बिना वह इस मृत्युलोकमें एक दिवस भी व्यतीत न कर सकी, और असार संसारको लात मारकर दूसरे लोकको प्रस्थान कर गई। अब तुम उसे कहाँ खोजते हो? वह किसीको नहीं मिल सकती। मृत्युद्वारा उसके परमाणु वायु, जल, मिट्टी, अग्नि और आकाशमें बाँटे जा चुके हैं। उनसे पूछो, तुम्हें वापस लौटाये जा सकते हैं—अहह—हा हा हा पागल हो गया है।

(जोरसे हँसती है।)

पागल हो गया है, पागल हो गया है।

विद्युत्प्रभ—कौन पागल हो गया है?

सुखदा—तुम और कौन? पाप-स्मृतिने तुम्हें पागल कर दिया है। किसी वैद्यसे जाकर औषध लो। क्या तुम सुखदाके पुत्र हो, जो उसके वियोगमें रो रहे हो? अब वह इस लोकमें नहीं है।

विद्युत्प्रभ—ललिता !

सुखदा—ललिता ! कौन ललिता ! क्या राजकुमारी अञ्जनाकी दासी ललिता ? वह सुखदाकी सखी थी। उसे याद किया करती थी। उसके लिए ठंडी साँसें भरा करती थी। उसके लिए रुदन किया करती थी। परन्तु इस नीले आकाशके नीचे अब वह भी नहीं है। जिस दिन उसने वनमें जाकर अपनी स्वामिनीका वध किया था, उसकी तो उसी दिन समाप्ति हो गई थी। अब यह शरीर जो तुम देखते हो, न सुखदाका है न ललिताका, इसपर एक राक्षसीने अधिकार कर लिया है। इसे संबोधन करना है तो 'राक्षसी' कहकर करो।

विद्युत्प्रभ—(स्वगत) इसके एक एक शब्दसे मेरा आत्मा भयभीत हो रहा है और आँखोंके सम्मुख अपने भूतकालके पापों और कुकर्मोंका दृश्य खिंच रहा है। ओह ! अब मेरे नेत्र इसे देखना पसंद नहीं करते। क्या आज कोई विशेष घटना होनेवाली है, जो मेरा पापी हृदय थर्रा रहा है।

सुखदा—(रोकर) बोलो, कहो, तुम क्या विचार कर रहे हो ? क्या तुम ज्योतिषविद्या जानते हो ? हाथ देख सकते हो ?

विद्युत्प्रभ—हाँ, देख सकता हूँ।

सुखदा—तो लो देखो और बताओ कि मेरा ब्याह कब होगा ? मेरा पति कैसा होगा ?

विद्युत्प्रभ—क्या पूछती हो ?

सुखदा—याद नहीं रहा।

विद्युत्प्रभ—क्या याद नहीं रहा ?

सुखदा—कि मैंने कितने पाप किये और उनका बोझा कितना हो गया है ! (रोकर) वह मैं कैसे उठाऊँगी। न उठाऊँगी तो क्या

जमदूत अग्निके कोड़े मारेंगे ? क्या उस समय तुम मेरी सहायता करोगे, और उन अग्निके कोड़ोंको अपनी अश्रु-धारासे सर्द कर दोगे ? अहहह, याद आ गया, मैं अपने हृदयके रुधिरसे उन्हें बुझा दूँगी। परन्तु वह तो पापाग्निसे खुश्क हो चुका है। (चौंककर) परन्तु तुम तो मेरा हाथ देख रहे थे, अच्छी तरह देखो !

विद्युत्प्रभ—क्या देखूँ ?

सुखदा—यही कि इसपर पापके कितने धब्बे हैं और उनको मेटनेके लिए कितने पुण्य-कर्मोंकी आवश्यकता है ? (हाथ खींचकर) हाय, तुमने तो मेरे हाथको और भी काला कर दिया। क्या तुम भी मेरे समान पापके जीते जागते पुतले हो, बुराईके सजीव दृष्टान्त हो, छल कपटके चलते फिरते बदबूदार ढेर हो ? (धक्का देकर) हटो, दूर हो जाओ।

(विद्युत्प्रभका डरकर पीछे हटना)

सुखदा—क्यों ! डरते क्यों हो ? क्या परमात्माने मुझे इस लिए उत्पन्न किया है कि मुझे जो देखे वही डरे ? बाल्यावस्थामें माता डरी, घरसे निकली, तो पवन डरा, रत्नपुर गई तो अञ्जना डरी और सबसे पीछे चम्पा डरी। अब तो मैं सबसे डर रही हूँ और स्वयं अपने आपसे डर रही हूँ। मैंने जगतमें इतनी बदी की है, इतना पाप कमाया है कि अब और शक्ति नहीं रही।

विद्युत्प्रभ—सुखदा ! तुम्हारी अवस्था देखकर मैं पागल हो जाऊँगा।

सुखदा—पागल हो जाओगे ? नहीं, तुम पहले ही पागल थे,

नहीं तो मेरे साथी क्यों बनते ? चिन्ता न करो, मेरी अवस्था देखकर तुम पागल नहीं बनोगे।

विद्युत्प्रभ—परमात्मा ! मेरे पाप क्षमा कर और इस गरीबिनीको भी संतोष दे।

सुखदा—तू रोता है। क्यों रोता है ? अगर तेरे अश्रु काले नहीं, अगर तेरा हृदय पापी नहीं, तो रो और जी खोलकर रो, यहाँतक कि उसमें मेरे सकल पाप धोये जायँ, और मैं प्रसन्न-चित्तसे तुझे आशीर्वाद दूँ। (बिजली कड़कती है।) ओह ! यह क्या है ?—प्रजापतिकी घण्टी, न्यायकारीका ढोल। काले बादलोंपर सफेद बिजली मेरा नाम लिख रही है। जली ! जली ! अग्नि ! अग्नि ! सब संसार जल रहा है। बचाओ ! बचाओ ! मेरे पाप मुझे अग्नि बनकर लिपट रहे हैं। जम-दूत मुझे पकड़नेको दौड़ रहे हैं। अञ्जना मुझे क्रोधसे देख रही है। नहीं नहीं, मैंने तुम्हें नहीं मारा, मैंने कुछ नहीं कहा।

(अचेत होकर गिर जाती है।)

विद्युत्प्रभ—उठ ! दुर्भागिनी उठ ! ओह परमात्मा, यह तो मूर्च्छित हो गई है ! (जल लेने कुटियामें जाता है।)

(रत्नवीर और श्रीदेवका गुप्त स्थानसे निकलना)

रत्नवीर—(सुखदाको जोरसे हिलाकर) पापकी जीती जागती मूर्ति ! जाग और देख, तेरे कर्मोंके फलका समय आ गया।

सुखदा—(आँख खोलकर) तू कौन है ? मृत्युका जमदूत ?

रत्नवीर—हाँ, मृत्युका जमदूत।

सुखदा—मुझे न मार ! मुझे न मार ! मैंने कुछ नहीं किया ! मैंने कुछ नहीं किया ! आकाश अभी तक नीला है। प्रकाश अभी तक

मनोहर है। भूमि अभी तक सुन्दर है। वायु अभी तक रसमयी है। मैंने कुछ नहीं किया, तू मुझे क्यों मारता है ?

रत्नवीर—ताकि तेरे पापोंका फल तुझे मिल जाय और तुझे अपना हृदय धोनेकी आवश्यकता न रहे।

सुखदा—मेरे हाथका धब्बा मिट जायगा ? उसे तू मिटा देगा ! —मेरी आत्मा तड़प रही है, मेरे धब्बेको तू मिटा देगा ?

रत्नवीर—हाँ मिटा दूँगा।

सुखदा—तो सूर्य साक्षी है। मैंने तेरा पाप क्षमा कर दिया।

रत्नवीर—पिशाचिनी! चुड़ैल! चल, इस लोकपर तेरा बोझा है।

(रत्नवीरका तलवार मारना, विद्युत्प्रभका सहायताको आना, श्रीदेवका अपनी तलवार उसके पेटमें भोंक देना। अञ्जनाका एकाएक प्रवेश। रत्नवीर और श्रीदेवका तलवार छोड़कर भागना। विद्युत्प्रभका मर जाना। सुखदाका तड़पना।)

अञ्जना—सावधान! शोक! यह मर चुका और यह तड़प रही है।

सुखदा—कौन ? कौन ? अञ्जनाका भूत ?

अञ्जना—नहीं, सुखदा! मेरी अभागी बहिन! यह मैं आप हूँ।

सुखदा—तुम कौन ? अञ्जना ? क्या भूमिको मुर्दे उगलनेकी आज्ञा मिल गई ? क्या प्रकृतिका नियम बदल गया ? (तड़पती है)

अञ्जना—बहिन, क्या कह रही हो ? इस अन्तिम समयमें भी तुम्हारी आत्माको शान्ति नहीं ?

सुखदा—हट, दूर हो। मेरे जीवनके काल्पनिक स्वप्न, टूट जा। कल्पित जगत्की झूठी छाया, चली जा। यह असंभव है।

अञ्जना—पापकी स्मृतिका विषमय परिणाम, भयानक जीवनकी भयानक समाप्ति !

सुखदा—नहीं जाती ? तू नहीं जाती ? मैंने तुझे कब मारा था ? अरी पाषाणहृदया ! मेरी आँखोंसे ओझल हो जा ! जली ! जली ! थोड़ा-सा जल ! (तड़पती है।)

अञ्जना—यदि जल तुझे शान्ति दे सके, तो मैं आँखें निचोड़नेको उद्यत हूँ ।

सुखदा—अन्धकार हो गया, कुछ दिखाई नहीं देता। सूरज भी बुझ गया। तारे भी काले हो गये, चन्द्रमाका प्रकाश सर्द हो गया। आह....आह....मरी....म....म....मरी !

(तड़पती और मर जाती है)

अञ्जना—सुखदा ! सुखदा ! शोक है कि तू पापके परिणामसे न भाग सकी; कर्मोंकी आँधीमें टिमटिमाता हुआ दीपक न बच सका ।

[पवन, राजा महेन्द्रराय, राजा प्रतिसूर्य्य, राजा प्रह्लाद विद्याधर, और सिपाहियोंका प्रवेश ।]

सब—(चौंककर) हाय, यह क्या ?—लाशें ?

अञ्जना—संसाररूपी बागकी अंतिम बहार, सुन्दरता और यौवनके कुसुमका अंतिम दृश्य ।

महेन्द्रराय—(पहिचानकर) कौन विद्युत्प्रभ और राजकुमारी सुखदा ? तो चंपाके भाइयोंने बदला ले लिया ? पापके जीते जागते पुतले, ईर्षा और द्वेषके शरीरधारी खिलौने !

अञ्जना—मर गये, मार दिये गये। अपने कर्मोंका फल इस जगत्में भोग गये। अब इनके शरीर पवित्र हो चुके हैं। इनसे

घृणा न कीजिए। इनके बारेमें अपशब्द न कहिए। इनकी आत्मा अभी सुन रही होगी।

विद्याधर—स्वर्गीया देवी! तू धन्य है। तेरा हृदय धन्य है।

प्रतिसूर्य्य—दोनों लाशें उठाकर ले चलो और इनका यथाविधि दाह-कर्म करो और इनके माता-पिताको समाचार भेज दो।

(सबका प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—आदित्यपुरका राजमहल

समय—तीसरा प्रहर

[पवन और अञ्जना]

पवन—कहो प्रिये, कहो।

अञ्जना—आप बार बार क्या पूछते हैं? काले दिन आये और बीत गये, फिर उनको याद रखनेसे क्या लाभ है? अब तो ऐसा प्रतीत होता है, मानों वे केवल स्वप्नमात्र थे। आपके प्रेमकी ज्योतिने उस अन्धकारको मेरे हृदयसे दूर भगा दिया है। अब उसका कहीं पद-चिह्न तक दिखाई नहीं देता।

पवन—परन्तु इस दुर्भाग्यका कारण केवल मैं हूँ, यह सोचकर मेरा सिर लज्जा और घृणासे नीचे झुक जाता है और आँखें ऊपर नहीं उठतीं।

अञ्जना—नहीं प्राणनाथ! जीवनाधार! वह मेरे अपने पूर्व जन्मके कुकर्मोंका फल था।

पवन—कैसी सरलहृदया, कैसी नेक, कैसी धर्म्मात्मा स्त्री है! प्रिये, सच कहता हूँ, मुझे तुमपर गर्व और अभिमान है। परन्तु

यह तो कहो कि जब तुम पशुमुखा वनमें थीं, तो क्या तुमको अँधेरी रातोंमें भय न होता था ?

अञ्जना—नहीं जीवननाथ, आपका प्रेम उस अन्धकारमें प्रकाश बनकर चमकता था। मैं जानती थी, मैं समझती थी कि आप जहाँ कहीं भी हैं, अञ्जनाके हैं और अञ्जना आपकी है। मुझे विश्वास था कि आप मिलेंगे, फिर बीते हुए दिन लौटेंगे, फिर प्रेमके दौर चलेंगे फिर—

पवन—प्रिये! प्रियतमे! तुम्हारा प्रेम मुझे पागल बना देगा; तुममें इतना प्रेम क्यों है ?

अञ्जना—वह सब आपके लिए है।

पवन—इन वचनोंसे मैं कृतकृत्य हो गया। मैं और कुछ नहीं चाहता; केवल तुम्हारा प्रेम चाहता हूँ।

अञ्जना—वह तो मैं सदा आपको देती ही हूँ नाथ, उसके लिए चिन्ता न करें।

पवन—उसके लिए चिन्ता न करूँ ? देवी, यह तुम क्या कहती हो ? जो प्रेम बारह सालके त्यागमें नहीं हिला, जो प्रेम कलंक लगानेसे नहीं हटा, जो प्रेम दो सालके वनवासमें हिमालयके समान स्थिर रहा, मैं उसके लिए चिन्ता न करूँ ? यह वह बहुमूल्य वस्तु है, जिसके आगे संसारके सकल पदार्थ इकट्ठे होकर आ जायँ, तो भी सिर नहीं उठा सकते। यह वह स्वर्गीय आनन्द है, जिसके सामने स्वर्गकी कोई अन्य वस्तु नहीं ठहर सकती। मेरे पास सांसारिक धन, सम्पत्ति, राज्य, सुख, सम्मान सब कुछ है। परन्तु यदि यह सब कुछ मुझसे छीनकर मुझे केवल तुम्हारा पवित्र प्रेम दे दिया जाय, तो मुझे उतना भी शोक

न होगा, जितना एक चक्रवर्ती राजाको फटा हुआ वस्त्र फेंकनेसे हो सकता है।

अञ्जना—प्राणनाथ, आपके ये ही भाव हैं, जिन्होंने इतने घोर दुःखोंमें मेरी रक्षा की है। कहीं अब फिर मुझे न बिसार देना, मुझमें और दुःख सहनेकी शक्ति नहीं है।

पवन—नहीं प्रिये, नहीं, अब तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं, अब भूल नहीं हो सकती—कौन ?

[वसन्तमालाका सन्यासिनीके वेशमें प्रवेश]

अञ्जना—सखी, बहिन वसन्तमाला, यह क्या ? तेरे सुन्दर शरीरपर यह वस्त्र शोभा नहीं देते। तूने यह क्यों पहिने हैं ?

वसन्त०—मैं यही पहिनना चाहती हूँ।

पवन—परन्तु क्यों ?

वसन्त०—संसार असार है, उसके सुख निर्मूल हैं। अबतक आपकी सेवा की है। अब चार दिन परमात्माकी ओर भी झुक देखूँ।

पवन—भोली बहिन, क्या कहती हो ?

अञ्जना—सखी, मुझे छोड़कर न जाओ। मेरे मुखकी ओर देखो, आँखोंसे अभीतक उदासी नहीं गई। यदि तुम चली गईं, तो मेरा सुख थोड़ा रह जायगा।

वसन्त०—एक दासीके वियोगको इतना मान देना यह आपका ही काम है।

पवन—तुझे दासी कौन कहता है ? तुझे दासी किसने समझा है ? इस स्वार्थी संसारमें जहाँ भाई भाईके खूनका प्यासा हो रहा है, तूने बेगानी होकर जिस प्रकार अपनोंसे बढ़कर ममता दिखाई है, उसके कारण हम तुझे न दासी समझते हैं, न समझना हमारा धर्म

है। अब तू हमारी दासी नहीं, बड़ी बहिनके स्थानपर है। अपने पेटके लिए नौकरी हजारों और लाखों करते हैं, परन्तु दूसरोंके लिए नौकरी करना किसी विरलेका ही काम है।

अञ्जना—बहिन वसन्तमाला, तुमने मेरी बात आजतक नहीं टाली, अब क्यों हठ करती हो। नहीं, नहीं, मैं तुमको नहीं जाने दूँगी। सिर न हिलाओ, अस्वीकार न करो, मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ।

पवन—यह बैठे बिठाये तुम्हारे दिलमें क्या विचार आया है?

वसन्त०—राजकुमारी!

अञ्जना—आहा! इस शब्दमें कितना माधुर्य्य, कितना प्रेम भरा हुआ है। तो अब तुम न जा सकोगी। इस एक शब्दसे प्रतीत हुआ कि तुम्हारा हृदय प्रेमका स्रोत है, और वह स्रोत इस समयतक सूख नहीं गया। ऐसा हृदय दूसरे हृदयको ठोकर नही मार सकता। मैं तुमसे मिन्नत करती हूँ, मुझे अकेली न छोड़ो।

पवन—बहिन, तुम जानती हो, माता-पिता दोनों वानप्रस्थाश्रममें जा चुके हैं। यह घरमें अकेली है, इसे संसारका रास्ता कौन दिखायगा? तुममें दया है, तुम इसका ध्यान रक्खो। यह दुनियाके व्यवहारसे अजान है।

वसन्त०—ये साक्षात् लक्ष्मी हैं, संसार इनके सामने सिर झुकाना अहोभाग्य समझेगा। मुझे इस समय आज्ञा दीजिए, मैं महेश्वरका तप करूँगी। परन्तु यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि यदि मुझे यह पता लगा कि आपपर कोई विपत्ति है, तो तपादि ही नहीं, स्वर्गपर भी लात मारकर सेवामें उपस्थित हो जाऊँगी। परन्तु इस समय—आज्ञा दीजिए।

अञ्जना—तो तुमने यही स्थिर किया है?

वसन्त०—हाँ यही।

अञ्जना—अवश्यमेव जाओगी ?

वसन्त०—अवश्यमेव ।

अञ्जना—नहीं रुकोगी ?

वसन्त०—नहीं ।

अञ्जना—किसी प्रकार ?

वसन्त०—किसी प्रकार नहीं ।

अञ्जना—तो ठहरो, मेरा अन्तिम हथियार अभी बाकी है ।

(वेगसे प्रस्थान)

वसन्त०—यह अन्तिम हथियार क्या होगा ?

पवन—बहिन, न जाओ, तुम आगे काफ़ी तपस्या कर चुकी हो।

वसन्त०—राजकुमार, मेरा कर्त्तव्य मुझे बाहर खींच रहा है । मैं मनुष्यसे परे भागना चाहती हूँ ।

(अञ्जनाका बालकको लिये हुए प्रवेश)

अञ्जना—नहीं भाग सकोगी बहिन, नहीं भाग सकोगी । यह लो, इस बच्चेका मुँह देखो और फिर बताओ कि क्या तुम इसे देखे बिना रह सकोगी ? जिसे दिनभर गोदमें लिये रहती हो, जिसे रातको साथ सुलाती हो, जो तुम्हें घड़ीभर न देखे तो महल सिरपर उठा लेता है, जिसे चूम चूमकर पगली हो जाती हो, क्या उसे दिलसे भुला सकोगी ?

पवन—बहिन, इस बालकका ही ध्यान करो । यह रोता रहेगा, तुम्हारा हाथ पहिचानता है ।

वसन्त०—यह क्या ! मेरे हृदयमें संग्राम होने लगा । मेरा चित्त डोलने लगा । ठहर, हृदय ठहर, मैं तुझे समझा दूँ । पापी, उधर न देख, फँस जायगा ।

अञ्जना—(बालकको आगे करके) तुम न देखो, यह अपने आपको स्वयं दिखा लेगा। क्यों बेटा हनुमान ?

वसन्तमाला—(दूसरी ओर मुँह फेरकर) राजकुमारी, आज्ञा दो, मैं अब न रुकूँगी। (अञ्जना बालक सामने कर देती है।)

अञ्जना—परन्तु, तुम्हें मैं नहीं, यह बालक रोकेगा।

वसन्त०—फिर दिल हिलने लगा। चलते हुए पाँओंमें बेड़ियाँ पड़ गईं। परमात्मा, सहायता कर।

अञ्जना—वसन्त बहिन, इसे देख। यह रोने लगा है।

वसन्त०—बस ! अब मैं नहीं जा सकती। अब यह असम्भव है।

पवन—वसन्तमाला, तेरा प्रेम धन्य है।

वसन्त०—राजकुमारी !

अञ्जना—वसन्तमाला !

वसन्त०—यह तुमने क्या कर दिया ? चित्त शान्त था, आँधी थम गई थी, हृदय महेश्वरकी ओर चल रहा था, परन्तु तुमने इस बालकका मुँह दिखाकर मेरा रास्ता रोक दिया है। अब मैं उधर नहीं जा सकती। बेटा, तूने मुझपर कैसा जादू कर दिया है कि तुझे देखते ही मेरे विचार हार गये हैं और उत्साह भंग हो गया है। क्या तेरे बिना स्वर्गपुरीमें भी रह सकूँगी ? नहीं,—नहीं, असंभव है। राजकुमारी, इसे मेरी छातीसे लगा दो। मैं अब संन्यासिनी न बनूँगी।

(परदा गिरता है।)